सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई - 283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 56 : अंक : 06
सितम्बर 2023

प्रकाशन तिथि : 01.09.2023
मूल्य - एक प्रतिः 22/-, वार्षिक : 230/-

अमृतकण

गूढ़विद्यस्य सर्वेषां देहिनां ज्ञानसंभवः
उदयः स्वप्रकाशेन गुरुशब्देन कथ्यते

सब देहधारियों में गूढ़ विद्या से ही ज्ञान का सम्भव है। स्वप्रकाश से उदय होना गुरु शब्द से कहा जाता है।

◆ ◆ ◆

देही ब्रह्म भवेद्यस्मात्तत्कृतार्थं वदाम्यहम्
सर्वपापविमुक्तात्मा श्रीगुरुपादसेवनात्

जिस कृपा से देही (जीव) ब्रह्म हो जाता है उसके अर्थ को मैं कहता हूँ। सब पापों से मुक्त हुआ आत्मा श्री गुरुदेव के चरणों के सेवन से उस कृपा को प्राप्त करता है।

◆ ◆ ◆

सर्वतीर्थावगाहस्य प्राप्नोति सुफलं नरः
गुरोः पादोदकं पीत्वा जलं शिरसि धारयेत्

गुरुदेव के चरणोदक को पीकर जल को शिर पर धारण करे तो मनुष्य सब तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त करता है।

◆ ◆ ◆

शोषणं पापपंकस्य दीपनं ज्ञानतेजसां
गुरोः पादोदकं सम्यक् संसारार्णवतारकम्

गुरुदेव का चरणोदक पाप रूपी कीचड़ को सुखाने वाला, ज्ञान रूपी तेज का प्रकाश करने वाला, और सम्यक् प्रकार से संसार रूपी समुद्र से पार करने वाला है।

◆ ◆ ◆

अज्ञानार्तिहरं चैव जन्मकर्मनिवारणम्
ज्ञानविज्ञानसिद्ध्यर्थं गुरोः पादोदकं पिबेत्

अज्ञान रूपी दुःख के हरने वाले, जन्म कर्म के निवारण करने वाले गुरुदेव के चरणोदक को ज्ञान विज्ञान की सिद्धि के लिये पिये।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 56 सितम्बर 2023 अंक : 06

तं दुर्दशं गूढ़ मनु प्रविष्टं,
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्म येगाधिगमेन देवं,
मत्वा धीरों हर्ष शोकौ जहाति।।

अर्थात्

अर्थात् जो योग माया के पर्दे में छिपा सर्वव्यापी, सब के हृदय रूप गुहा में स्थित संसार रूप गहन बन में रहने वाला सनातन है। ऐसे उस कठिनता से देखे जाने वाले परमात्म देव को शुद्धि बुद्धि युक्त धीर साधक अध्यात्म योग की प्राप्ति के द्वारा समझकर हर्ष और शोक को त्याग देता है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- *योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज*	3
2.	सम्पादकीय	11
3.	श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- *डॉ. विजय सिंह*	15
4.	श्री प्रभुजी ने विष्णु विमान लौटाया- *श्री जगदीश राए बंसल*	19
5.	कल्याण का सरलतम् मार्ग- *श्री अन्तू राम यादव*	24
6.	गीता के उपदेश का रहस्य- *डॉ. विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र*	30
7.	ज्योतिष की दृष्टि में पुनर्जन्म विज्ञान- *डॉ. महेन्द्र प्रकाश गुप्त*	35
8.	सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर- *श्री विद्यानन्द सरस्वती*	39

एक प्रति	: रु. 22.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 230.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 1500.00

विशेष लेख

राज योग

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने इससे पहले किसी लेख में 'सहस्र दल कमल' का वर्णन किया है। सहस्र दल कमल ही एक ऐसा स्थान है जहाँ पहुँचकर शक्ति रूप जीवात्मा शिव रूप परमेश्वर में लय होकर अपने आपको शिव बना लेता है किन्तु साधक को इस बात का पूरी तरह से ख्याल रखना चाहिए कि वह अपनी धारणा को पहले से ही परिपक्व रखता चला जाये। **'साधनासिद्ध'** मन ही सब प्रकार की साधनाओं में परिपूर्णता को प्राप्त किया करता है। हमारे शास्त्र का एक सिद्धान्त है जिसको योगियों ने अपनाया है। साधकों के लिये यह अटल है।

अर्थात्–

यत्र मनोलीयते,
तत्र प्राणोलीयते।
यत्र प्राणोलीयते,
तत्र मनोलीयते।।

अर्थात् जहाँ मन लय हो जाता है वहाँ प्राण लय हो जाता है और जहाँ प्राण लय होता है वहाँ ही मन लय हो जाता है। यह योगियों का अकाट्य सिद्धान्त है। योग के दो ही आधार हैं एक मन और दूसरा प्राण। मन की साधना को राजयोग कहते हैं और प्राण की साधना को हठयोग कहते हैं।

नृणामे को गम्य स्त्वमसि,
पय सामर्णवइव:।

जिस प्रकार से सभी नदी–नालों का गम्य–स्थान समुद्र होता है, इसी प्रकार से प्राणिमात्र के गम्य स्थान भगवान सदाशिव हैं और उनको प्राप्त करने के लिये, एक मात्र साधन योग है। इस योग के अन्दर सभी साधनायें निहित हैं। राजयोग, हठ योग, लय योग, मंत्रयोग, भक्तियोग, जययोग आदि बहुत से भेद हैं। किन्तु उनमें से साधना केवल दो ही प्रकार की, की जाती हैं। चाहे हम मनोलय वाली साधना करलें या प्राणलय वाली। प्राणलय वाली साधना करने वाला व्यक्ति हठयोग का आश्रय लेता है। जो लोग

हठयोग की साधना करते हैं प्रथम प्राण जय करके विविध नाड़ियों में प्राण का प्रवेश कराना प्राण पर नियंत्रण करके स्फुट प्रज्ञालोक को प्राप्त करना उनका ध्येय रह जाता है। वैसे–

'सर्वपदा हस्तिपदे निमग्नाः।'

के नियमानुसार हठयोग का भी लक्ष्य राजयोग की प्राप्ति ही है। किन्तु हठयोगी–राजयोग को प्राप्त करने के लिये अपनी आधार भित्ति को पूर्ण परिपक्व कर लेता है। ऐसा योगी पतन से परे हो जाता है। जो लोग बिना हठयोग की साधना के राजयोग के अभ्यास में लगे रहते हैं वे लोग इतनी जल्दी सफलता को नहीं प्राप्त कर सकते जितनी जल्दी एक हठयोगी सफलता को प्राप्त किया करता है। जिन लोगों की ख्याति आजकल अजरत्व अमरत्व में मुख्यत है वे लोग सभी हठयोग की साधना के द्वारा राजयोग की उच्चतम समाधि को प्राप्त हुए। जो लोग बिना हठयोग की साधना किये राजयोग की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं वे निरन्तर अभ्यास करते हुए अपने लक्ष्य को तो पा ही लेते हैं किन्तु शरीर इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहंकार पर पूर्ण विजय जिस प्रकार एक हठयोगी प्राप्त करता है उतना जल्दी नहीं कर पा सकते।

शरीरेण जिता सर्वे,
शरीरं योगिभिर्जितम्।
तत्कथं कुरुते तेषां,
सुख दुःखादिकं फलम्॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धि
कामक्रोधादिकं जितम्।
तेनैव विजितं सर्व नासौ,
केनापि बाध्यते॥
महाभूतानि तत्त्वानि,
संहतानि क्रमेण च।
सप्त धातुमयो देहो,
दग्धो योगाग्निना शनैः॥
देवैरपि न लक्ष्येत
योगिदेहो महाबलः।
भेद बन्धविजिर्मुक्तो,
नाना शक्तिधरः परः॥

यथाकाशस्तथा देह
आकाशदपि निर्मलः।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरो दृश्यः
स्थूलात्स्थलो जडाज्जडः।
इच्छारूपो हि योगीन्द्रः
स्वतन्त्रस्त्वजरामरः।
क्रीडते त्रिषु लोकेषु
लीलया यत्रकुत्रचित्।।
अचिन्त्य शक्तिमान्योगी
नानारूपाणि धारयेत्।
संहरेच्च पुनस्तानि
स्वेच्छया विजितेन्द्रियः।।
नासौ मरणमाप्नोति
पुनर्योगबलेन तु।
हठेन मृत एवासौ,
मृतस्य मरणं कुतः।।
मरण यत्र सर्वेषां,
तत्रासौ परिजीवति।
यत्र जीवन्ति मूढ़ास्तु,
तत्रासौ मृत एव वै।।
कर्त्तव्यं नैव तस्यास्ति,
कृतेनासौ न लिप्यते।
जीवन्मुक्तः सदा स्वच्छः,
सर्वदोष विवर्जितः।।

साधारणतः सारे संसार के लोग शरीर से जीते जाते हैं। शरीर में जिस प्रकार के भी दुःख सुख आदि होते हैं संसार वाले उन दुःखों से दुःखी रहते हैं। केवल मात्र एक योगी ही अपनी साधनाओं के द्वारा शरीर पर अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। फिर उनको दुःख सुख आदि शरीर धर्मों का अनुभव नहीं होता। शनैः शनैः इस प्रकार के हठयोगी इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि को जीतकर काम, क्रोधादि पर अपना नियन्त्रण प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे अभ्यास के फलस्वरूप वह योगी सभी पर अधिकार पा जाते हैं और किसी

के भी बन्धन में नहीं आते। वह अपनी योगाग्नि के द्वारा सप्त धातुमय शरीर को जला डालते हैं। देवता भी उनके शरीर को नहीं देख पाते। वे भेद बन्ध आदि से मुक्त होकर बहुत प्रकार की शक्तियों को पा लेते हैं। जिस प्रकार से आकाश निर्मल है इसी प्रकार योगी का शरीर भी निर्मल रहता है। योगी का शरीर सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्थूल से स्थूल और जड़ से जड़ है योगी पुरुष परम स्वतन्त्र अजर–अमर और इच्छानुरूप होते हैं और तीनों लोकों में स्वतन्त्र विचार करते हैं। वे अचिन्त्य शक्तिवान योगी चाहें तो हजारों प्रकार के रूप धारण कर लें और उनका उपसंहार भी कर लें। वह योगी जिसने हठयोग के द्वारा अपने आप को मार लिया है वह फिर किसी के मारने से नहीं मरते। ना ही उनका संसार में कोई कर्त्तव्य रहता है। सब दोषों से रहित हो जाते हैं। उनके मुकाबले में कोई भी शक्तिशाली नहीं रहता किन्तु इस प्रकार की हठयोग की साधना करने वालों का भी लक्ष्य राजयोग ही रहता है। राजयोग की साधना मन से आरम्भ होती है। राजयोग की साधना में–

यत्र मनोलीयते,
तत्र प्राणोलीयते।

का सिद्धान्त चालू रहता है। हठयोग की साधना में प्राण की प्रधानता रहती है और राजयोग की साधना में मन की प्रधानता रहती है। राजयोग की साधना का लक्ष्य सहस्र दल कमल है और हठयोग की साधना का लक्ष्य षट्–चक्रों को भेदन करते हुए प्राण वायु को ब्रह्म रन्ध्र तक पहुँचाना है। क्योंकि प्राणायाम का फल भगवान पतंजलिदेव ने योग–दर्शन में **'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'** लिखा है। श्री पतंजलिदेव जी ने या हमारे अन्य आचार्यों ने अपने अनुभव के आधार पर जिन–जिन सिद्धान्तों की रचना की है वे सभी नितान्त सत्य हैं। उनमें मन्तव्यामन्तव्य का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। जो लोग आचार्यों के मतों का अवलम्ब लेकर एवं किसी अनुभवी गुरु के द्वारा शिक्षा पाकर इस पवित्र मार्ग पर चलने की चेष्टा करते हैं उनको अपने अभ्यास का परिणाम शास्त्रोक्त पद्धति से ही सामने आता है जिसको वे जान लेते हैं कि वस्तुतः यथार्थता यही है। राजयोगी एवं हठयोगी की आकृति उनके अन्तर्निहित तेज को प्रकाशित करने लगती है। हठयोग की साधना करने वालों के शरीर में स्वाभाविक कृशता, अल्पमूत्र–पुरुषत्व, स्वर सौष्ठवता एवं शरीर लाघव आदि गुणों को अनुभव करने लगता है इसके अतिरिक्त जो लोग स्वाध्याय, तप या अन्य किसी भी प्रकार की साधना द्वारा परम प्रकाशवान तेज को प्राप्त होते हैं उनके मुख मण्डल से स्वाभाविक ही तेज का प्रकाश होने लगता है वे लोग किसी भी रूप में छुपे हों किन्तु उनका महात्मत्व सर्व साधारण की दृष्टि में आने लगता

है। राज ग की साधना का परिणाम भगवान सदाशिव ने अपनी शिव–संहिता में बहुत ही ऊँचे शब्दों में वर्णन किया है। राज–योग की साधना का फल बदलाते हुए भगवान सदाशिव इस प्रकार वर्णन करते हैं–

अत ऊर्ध्व दिव्यरूपं,
सहस्त्रारं सरोरुहम्।
ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य देहस्य
बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदम्।।
कैलासो नाम तस्यैव,
महेशो यत्र तिष्ठिति।
अकुलाख्योऽविनाशी च,
क्षय वृद्धि विवर्जितः।।
स्थान स्थास्य ज्ञानमात्रेण नृणां
संसारेस्मिन् सम्भवो नैव भूयः।
भूतग्राम सन्तताभ्यासयोगात्,
कर्तुंहर्तुंस्यच्च शक्तिः समग्रा।।
स्थाने परे हसनिवास भूते
कैलासनाम्नीह निविष्टचेता।
योगी हतव्याधिरधः कृताधिर्षा
युश्चिरं जीवति मृत्यु मुक्तः।।
चित्त वृत्तिर्यदा लीना,
कुलाख्ये परमेश्वरे।
तदा समाधिसाम्येन
योगी निश्चलतां ब्रजेत।।
निरन्तरकृते ध्याने
जगदिस्मरणं भवेत्।
तदा विचित्रसामर्थ्यं,
योगिनो भवति ध्रुवम्।।

अर्थात् तालु के ऊपर के भाग में सहस्रार कमल कहा गया है। सहस्रार तक शरीर की स्थिति ब्रह्मांड के रूप में बतलाई गई है। सहस्रार तक ब्रह्माण्ड का वर्णन किया गया है उससे आगे व्यापकत्त्वेन परमात्मा की स्थिति है। जहाँ पर ये स्थान है उसी को महा

कैलाश के रूप में माना गया है।

क्षय वृद्धि विवर्जित सदा एकरस शुद्ध चेतन भगवान सदाशिव की स्थिति है। इस के इस स्थान का ज्ञान हो जाने पर संसार के जन्म मरण से छूट जाता है। और स्वयं भगवान सदाशिव के रूप में लय होकर योगी को संहार शक्ति प्राप्त हो जाती है। इसी स्थान में परम हंस तत्व प्रकाशित होता है। योगी इस स्थान पर ध्यान करने से जन्म मरण के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। अभ्यास करते-करते योगी की वृत्ति इतनी ऊँची उठ जाती है कि जब भी वह इस महाकैलाश का चिंतन करता है तभी बाहर की सुध-बुध को बिल्कुल भुला देता है।

तस्माद्गलितपीयूषं,
पिबेद्योगी निरन्तरम्।
मृत्योर्मृत्युं विधायाशु,
कुल जित्वा सरोरुहे।।
अत्र कुण्डलिनी शक्तिर्लय,
याति कुलाभिधा।
तदा चतुर्विधा सृष्टि,
लीयते परमात्मनि।।
यज्ज्ञात्वा प्राप्य विषयं,
चित्त वृत्ति विलीयते।
तस्मिन्परिश्रमं योगी,
करोति निरपेक्षक:।।
चित्त वृत्तिर्यदा लीना,
तस्मिन योगी भवेद् ध्रुवम्।
तदा विज्ञायतऽखण्ड,
ज्ञान रूपी निरञ्जन:।।
ब्रह्मांड बाह्ये संचिन्त्य स्वप्रतीक यथेदितम्।
तमावेश्य महच्छून्यं चिन्तयेद विरोधत:।।

अर्थात् अनुभवी योगियों ने इसी सहस्र दल कमल को भी चन्द्रमा का निवास माना। चन्द्र मण्डल से हर समय अमृत का स्राव होता रहता है जिसको पान करके योगी मृत्यु को जीत लेता है। इसी सहस्त्र दल कमल में कुण्डलिनी लय होती है और कुण्डलिनी के लय होने पर चतुर्दल सृष्टि का भी वहाँ लय हो जाता है। सहस्रदल कमल का ज्ञान

होने पर चित्त वृति भी वहाँ लय हो जाती है एवं चित्त वृत्ति के लय हो जाने पर अखंड निरंजन परमात्मा का प्रकाश होता है। साधक को चाहिए भीतर बाहर अपने आत्म स्वरुप का चिंतन करता रहे।

आद्यन्तमध्य शून्यं,
तत्कोटि सूर्यसमप्रभम्।
चन्द्र कोटि प्रतीकाशम–
भ्यस्य सिद्धिमाप्नुयात्।।
एतत् ध्यानं सदा कुर्याद,
नालस्यं दिने दिने।
तस्य स्यात्सकला सिद्धि,
र्वत्सरान्नात्र संशयः।।
क्षणार्ध निश्चलं तत्र,
मनो यस्य भवेद ध्रुवम्।
स एव यागी सद्भक्तः,
सर्वलोकेषु पूजित।।
तस्य कल्पमषसंघातस्त–
त्क्षणादेव नश्यति।।
य दृष्ट्वा न प्रवर्तन्ते,
मृत्यु संसार वर्त्मनि।
अभ्यसेत्तं प्रयत्नेन,
स्वाधिष्ठानेन वर्त्मना।।
एतत् ध्यानस्य माहात्म्यं,
मया वक्तुं न शक्यते।
यः साधयति जानाति,
सोऽस्माकमति सम्मतम्।।
ध्यानादेव विजानाति,
विचित्र फलसंभवम्।
अणिमादि गुणोपेतो,
भवत्येव न संशयः।।

अर्थात् आदि अंत रहित करोड़ों सूर्यों के समान महान प्रकाश एवं करोड़ों चन्द्रमा के समान शुभ शीतल तेज को जो लोग निश-दिन ध्यान करते हैं वे लोग जल्दी ही सब प्रकार की सिद्धियों को पा जाते हैं। इस ध्यान में जिसका मन आधा क्षण भी लीन हो जाता है वह योगी सर्वलोक पूजित है। एवं सब प्रकार के पाप समूह को जल्दी से जल्दी नष्ट कर डालता है। संसार के जन्म मरण से छूट जाता है। इस ध्यान का महात्मय कहा नहीं जा सकता। जो इस ध्यान को करता है वही इसके महात्मा को जानते हैं एवं जल्दी ही अणिमादिक सकल ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेते हैं। इस राजयोग का सम्बन्ध मन से है। अभ्यासी को चाहिए जल्दी घबराये नहीं प्रत्युत अपने अभ्यास को निरन्तर बढ़ाता रहे। भगवान के उस वचन को हर साधक को याद रखना चाहिए—

कर्मण्येयाधिकारस्ते,
मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भुः
मा ते सङ्गोस्त्वकर्मणि।।

अर्थात् मनुष्य को अपने कर्त्तव्य के पालन में तत्पर रहना चाहिए कर्म-फल के पीछे नहीं पड़ना चाहिए। जो लोग कर्त्तव्य रहित होकर कर्म फल के पीछे पड़े रहते हैं वे लोग भारी भूल करते हैं। सभी को यह लोकोक्ति याद रखनी चाहिए कि—

मनुष मजूरी देत है,
क्यों राखे भगवान ?

जब मनुष्य पुरुषार्थ करता है तब ईश्वर की ओर से उसकी बराबर सहायता होती है। जो मनुष्य सुकृत मार्ग पर चलता है उसका पुण्यफल उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है एवं विघ्न बाधायें नष्ट होती चली जाती हैं। अतः उपरोक्त राजयोग का महात्म्य भगवान सदाशिव ने जिन शब्दों में वर्णन किया वे सभी पूर्ण सत्य एवं सर्वथा माननीय हैं। कुछ समय के अभ्यास के बाद परिणाम वही दिखलाई देगा जैसा कि उपरोक्त श्लोकों में वर्णित है। अतः अपने मन को शुद्ध शान्त बनाकर के ध्यानपरायण बना लेना चाहिए, जिससे मनुष्य अपने परम पुरुषार्थ के फल को पाकर कृतकृत्य हो सके।

मानव जीवन में योग की आवश्यकता–
हर युग में हर व्यक्ति को पग-पग पर ?

योग हमारे ऋषियों की अमूल्य निधि है जिसकी मानव को पग–पग पर आवश्यकता है। योग एक विज्ञान है तथा जीने की कला भी। Yog is a spiritual science as well as an art of living.

योग के प्रयोग से ही मनुष्य जीवन में उन्नति के परम शिखर तक पहुँच सकता है।

योग आत्म–साक्षात्कार का या मुक्ति का एकमात्र साधन है। वेद, उपनिषद् पुराण जिस अमृत विद्या की महिमा गाते अघाते नहीं हैं वह योग विद्या ही है। अध्यात्म में जहाँ योग की आवश्यकता अपरिहार्य है वहीं पर सामान्य जीवन में भी इसकी उपयोगिता बनी रहती है। मनुष्य के श्वास लेने से लेकर हर क्रिया में योग का ज्ञान आवश्यक है।

योग समुन्नत ढंग से जीने की शैली है। अपने मन को स्थिर रखने के लिए योग का विज्ञान जानना आवश्यक है। योग मनुष्य को समतावस्था में जीना सिखाता है। **'समत्वं योग उच्यते'** मन की समतावस्था को ही योग कहते हैं। बुद्धि का सन्तुलन योग से ही बनता है। योग । स्थित रहने वाला योगी सुःख दुःख लाभ–हानि, सफलता–असफलता में अपने मन के सन्तुलन को खोता नहीं है।

'यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणांपि विचाल्यते'

–गी. 6/22

भारी से भारी कष्ट पड़ने पर भी योगी का मन विचलित नहीं होता है। योगी की वृत्ति ब्राह्मी–वृत्ति होती है। योगी की बुद्धि स्थिर रहती है। मन एकाग्र रहने के कारण योगी का संकल्प अमोघ होता है। प्रकृति योगी की इच्छा के अनुसार काम करती है। सारी शक्तियाँ व विभूतियाँ एकाग्र मन का ही परिणाम होता है। योगी का आहार–विहार, सोना–जागना उचित समय पर तथा उपयुक्त मात्रा में होता है। इसी से योगी के जीवन में रोग व दुःख नहीं आते। योगी के विचार हमेशा सकारात्मक होते हैं। अपने पर उपकार करने वाले पर भी योगी उसका हित ही करता है। योगी एक विचार है, धारणा है। हम अपने पूर्वजों के इतिहास और जीवन शैली देखें तो लगता है आज मनुष्य उन विचारों को सिद्धान्तों को, जीवन मूल्यों को त्याग रहा है अवहेलना कर रहा है वे जिस ज्ञान एवं उन्नति के शिखर पर पहुँचे थे वह अमूल्य है अनुकरणीय है। सिद्धान्त वे होते हैं

जो हमेशा अकाट्य होते हैं। आज मनुष्य भौतिक वादी और भोग वादी हो गया है आकण्ठ भोगों मे डूब रहा है। अनन्त सुख सुविधाओं के बावजूद हताश और निराश है। वह अन्दर से भयभीत, अशान्त और क्रुद्ध है। लूट, हत्या, वैमनस्य, धोखा, ईर्षा की अग्नि में जल रहा है। इन सब का एकमात्र कारण योग विद्या से दूर होना है। मानव के मूल धर्म यम-नियम का पालन नहीं हो रहा है। भगवान की पूजा भी इसलिए करता है उसे योग्य पदार्थ मिलते रहें इनमें कमी न हो। आत्म के उत्थान के लिये प्रयत्नशील नहीं है। योग हमें शिव जैसा बना देता है, श्रीकृष्ण जैसा बना देता है। योगी दीन नहीं होता। वह किसी से माँगता नहीं है अपने अन्दर निहित अद्भुत क्षमताओं को जागृत कर उन्हीं से अपने लौकिक और आध्यात्मिक जगत को प्रकाशमय करता है। अध्यात्म जगत जिसका प्रकाशित है वही महापुरुष होता है और संसार में बड़े-बड़े कार्य किया करते हैं। हमारे सनातन हिन्दु धर्म के अनुयायियों के इष्ट भगवान शिव, राम या कृष्ण होते हैं। ये योगेश्वर हैं योग की सम्पूर्ण शक्तियाँ इनमें निहित हैं इसी से जगत में सर्वपूज्य हैं।

(सम्पादकीय-सितम्बर 2017)

स्वच्छता एक वरदान

आजकल के समय में स्वच्छता पर काफी बल दिया जा रहा है। महात्मा गाँधी जी भी स्वच्छता के प्रबल पक्षधर रहे हैं। वर्तमान में हमारे देश के प्रधानमन्त्री जी एवं उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री जी इसे सेवा का रूप मानते हैं। राष्ट्र के समर्थ बनाने में उसे परम उपयोगी मानते हैं। सेवा निःस्वार्थ भाव से मन से की जाती है। इससे अपने देश की सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा व पहचान होती है।

स्वच्छता-स्वच्छता, गन्दगी रहित, निर्मल स्थिति को कहते हैं। जीवन के हर क्षेत्र में इसकी आवश्यकता होती है। जहाँ गन्दगी होती है वहीं से ही रोग के कीटाणु पनपते हैं और नाना रोगों के कारण बनते हैं।

इसलिए आवश्यक है कि हम अपने गली, मुहल्ले व घरों को स्वच्छ रखें। स्वच्छ देश ही महान कहलाने योग्य है। अतः स्वच्छता एवं स्वास्थ्य का अमिट सम्बन्ध है। स्वास्थ्य मनुष्य का अमूल्य धन होता है कहा भी गया है Health is Wealth जहाँ हम वातावरण को साफ स्वच्छ रखते हैं वहाँ व्यक्तिगत जीवन में भी अपने शरीर को स्वच्छ रखें। शास्त्रों में इस विषय में आया है।

''अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति
विद्या तपोभ्याम भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।''

अर्थात् मिट्टी, जल, साबुन आदि से शरीर की शुद्धि करनी चाहिए। सत्य वाणी तथा आचरण से मन शुद्ध होता है। विद्या एवं तप से जीवात्मा की शुद्धि होती है तथा ज्ञान से बुद्धि निर्मल होती है।

बुद्धि को शुद्ध रखने के लिये आहार का भी बहुत महत्त्व है। शास्त्र कहते हैं–

आहार शुद्धों सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृति।

अर्थात् आहार शुद्ध व सात्विक हो तो बुद्धि शुद्ध होती है और बुद्धि के शुद्ध होने पर स्मृति अटल रहती है। अतः आहार शुद्धि पर भी ऋषियों ने बहुत बल दिया है। प्याज व लहसुन का सेवन कभी नहीं करना चाहिए। अध्यात्म योग में भी महर्षि पतंजलि देव जी ने यम नियमों के अन्तर्गत नियम में सर्वप्रथम शौच का वर्णन किया है। शरीर शुद्धि के अन्तर्गत शौच आदि जाने के पश्चात् मिट्टी आदि से दस बारह बार हाथ धोना चाहिए तथा स्नान करना चाहिए। भारत देश गर्म है वातावरण गर्म रहने के कारण पसीना आदि के आने से शरीर में बदबू हो जाती है। अतः साबुन, मिट्टी आदि से स्नान करना आवश्यक होता है। शुद्ध शरीर में ही शुद्ध मन का वास रहता है। वृत्ति सतोगुणी होती है जिससे मन को प्रसन्नता मिलती है।

गीता में भगवान ने आसुरी एवं दैवी सम्पदा वाले जीवों का वर्णन किया है। आसुरी सम्पदा वाले मनुष्यों के विषयों में वे कहते हैं।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुरा
न शौचं नापि चाचारो न सत्यम् तेषु विद्यते।।

–गी. 16/7

अर्थात् आसुरी वृत्ति वाले प्रवृत्ति और निवृत्ति को नहीं जानते। उनमें न शौच का पालन करते हैं। तथा उनका आचरण भी ठीक नहीं होता है और सत्य उनके जीवन में नहीं होता हैं।

स्वच्छता ही सतोगुण को प्रदान करने वाली होती है। गीता के चौदहवें अध्याय में भगवान सतोगुण के विषय में कहते हैं–

तत्र सत्वं निर्मलत्वात प्रकाशकनामयम्

गी. 14/6

अर्थात् सतोगुण की वृद्धि होने पर प्रकाश का उदय होता है तथा व्यक्ति निरोग रहता है। आजकल के पढ़े लिखे व्यक्ति सतोगुण और तमोगुण के Positive energy तथा Negative energy के रूप में जानते हैं।

योग एवं अध्यात्म में भी शुद्धि के बिना मुक्ति की संभावना नहीं है।

पातंजल सूत्र है–

''सत्व पुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यम्''

अर्थात् बुद्धि के पूर्ण निर्मल होने पर तथा आत्मा के पूर्ण शुद्ध होने पर ही कैवल्य या मुक्ति लाभ होता है।

इस प्रकार से स्वच्छता की जीवन के हर क्षेत्र में आवश्यकता है। यह किसी देश की सभ्यता एवं संस्कृति को दर्शाती है। विदेशों में सार्वजनिक स्थलों पर गन्दगी फैलाने वालों पर दण्ड का भी विधान है। हमारे देश में भी ऐसे ही दण्ड का विधान होना चाहिए।

हमारे देश के प्रधानमन्त्री जी ने घर–घर शौचालय बनाने का जो संकल्प लिया है वह सराहनीय है। इससे भारत की छवि अच्छी बनेगी। हमारा देश हर क्षेत्र में सशक्त और समर्थ बन सकेगा। दुनिया के विकासशील देशों में भारत अग्रगण्य बनेगा। हमारे देश के नेताओं की भी छवि स्वच्छ व ईमानदारी की होनी चाहिए ताकि जनता भी उनके पद चिन्हों पर चलकर देश को आगे ले जाने में उनका पूरा–पूरा सहयोग दे सकें।

स्वच्छता से भारत सशक्त तथा समर्थ बन सकता है। योगी जी एवं मोदी जी ने यह अभियान चलाकर जनता में स्वच्छता के लिए जागृति पैदा की है; इसके लिये यह दोनों महापुरुष धन्यवाद के पात्र हैं। सिंगापुर आदि स्वच्छता प्रिय देश हैं वहाँ के कानून बड़े सख्त हैं। सार्वजनिक स्थान पर लघुशंका करने के पश्चात् यदि फ्लेश नहीं चलाते हैं तो महीनों की जेल को सकती है या 8000 रु. दण्ड देना पड़ता है। सार्वजनिक स्थानों पर सफाई का विशेष ध्यान दिया जाता है, इसे देश की गरिमा से जोड़ा जाता है।

यत्रायतिष्ठते सोऽपि स देशः पुण्यभाजनः
मुक्तस्य लक्षणं देवि तवाग्रे कथितं मया

जहाँ वह गुरु निवास करता है वह देश ही पुज्य का पात्र है। हे देवी! मैंने तुमसे जीवन्मुक्ति के लक्षण कहे।

॥ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः॥

श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा

डा. विजय सिंह

तेइसवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने बाइसवें अध्याय के अन्त में पूछे प्रश्न के उत्तर में उद्धव जी को एक तितिक्षु ब्राह्मण का इतिहास सुनाया है। उद्धव जी ने पूछा–भगवन्! आपके भागवत् धर्म के आचरण में प्रेमपूर्वक जो संलग्न हैं, उन शांत पुरुषों के अतिरिक्त बड़े–बड़े विद्वानों के लिये भी दुष्टों के द्वारा किया तिरस्कार सह लेना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि प्रकृति अत्यन्त बलवती है। श्री शुकदेव जी परीक्षित् से कहते हैं कि श्रीभगवान् कृष्ण ने उद्धव के प्रश्न की प्रशंसा करके कहते हैं–देवगुरु बृहस्पति के शिष्य उद्धव जी! सच है कि संसार में प्रायः ऐसे संत पुरुष नहीं मिलते, जो दुर्जनों की कटुवाणी से अपने को संभाल सकें। इस संदर्भ में कही गयी एक प्राचीन इतिहास तुम्हें सुनाता हूँ। मन लगाकर सुनो।

प्राचीन समय में, उज्जैन में एक ब्राह्मण रहता था। वह धनी था परन्तु बहुत ही कृपण, कामी और लोभी। क्रोध तो उसे बात–बात में आ जाया करता था। उसके सगे–सम्बन्धी कुटुम्बी, परिजन सभी उससे दुःखी रहते थे। वह कृपण स्वयं धन–सम्पत्ति का अपने सुख के लिये भी उपभोग नहीं करता था। वह लोक–परलोक दोनों से गिर गया। उसका धन बलात चोर डाकुओं ने, कुछ सगे सम्बन्धियों ने, कुछ राज दण्ड के रूप में जाती रही। धन के नाश से उसके हृदय में बड़ी जलन हुई। मन खेद से भर गया। मन में संसार के प्रति उत्कट वैराग्य का उदय हो गया। वह चिन्तन करके अर्थ के अनर्थ को प्रयक्ष देखा। यह शरीर मोक्ष और स्वर्ग का द्वार है, फिर अनर्थों के धाम धन के चक्कर में क्यों पड़ा रहे। मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत हो गया हूँ। मैंने प्रमाद में आयु, धन और बल सब खो दिये। मैं अब काल के विकराल गाल में पड़ा हुआ हूँ। मुझ पर भगवान अवश्य प्रसन्न हैं तभी मुझे इस दशा में पहुँचाया है। अब जो आयु शेष है उसमें अपने शरीर को तपस्या के द्वारा सुखा डालूँगा। अभी निराश होने की कोई बात नहीं है, क्योंकि राजा खटवाङ्ग ने तो दो घड़ी में ही भगवद्धाम की प्राप्ति कर ली थी।

तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वराः।

मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वाङ्गः समसाधयत्।।30.23।।

उस उज्जैनवासी ब्राह्मण ने मन–ही–मन निश्चय करके मैं और 'मेरे' वाली भाव की गाँठ खोल दी। इसके बाद वह शान्त होकर मौनी संन्यासी हो गया। आसक्ति रहित अपने मन, इन्द्रिय और प्राणों को वश में करके स्वच्छन्द विचरने लगा। वह बहुत बूढ़ा हो गया था। दुष्ट उसे बहुत परेशान करते। कोई उसका दण्ड, कमण्डल छीन लेता। कोई उस पर थूक देता। लोग उस मौनी को तरह–तरह से कष्ट देकर बोलने हेतु विवश करते, पीटते इतने पर भी वह नहीं बोलता। यद्यपि नीच पुरुष तरह–तरह से तिरस्कार करके उसे उसके धर्म से गिराने की चेष्टा किया करते पर वह बड़ी दृढ़ता से अपने धर्म में स्थिर रहता। सात्विक धैर्य का आश्रय लेकर कभी–कभी ऐसा सोचता। मेरे सुख, दुःख कारण न ये मनुष्य, न देवता, न ग्रह, न काल आदि हैं। महात्मा जन मन को ही परम कारण बताते हैं। मन ही सारे संसार चक्र को चला रहा है। दान अपने धर्म का पालन, नियम, यम, वेदाध्ययन, सत्कर्म और ब्रह्मचर्यादि श्रेष्ठ व्रत सबका अन्तिम फल है कि मन एकाग्र हो जाये, मन का समाहित हो जाना ही परम योग है।

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च

श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।

सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः

परो हि योगो मनसः समाधिः।। 46.23।।

सभी इन्द्रियाँ मन के वश में है, मन किसी भी इन्द्रिय के वश में नहीं है। यह मन बलवान से भी बलवान है, अत्यन्त भयंकर देव है। जो इसे अपने वश में कर लेता है, वह देवों का देव है।

प्राचीन ऋषियों ने परमात्म निष्ठा का ही आश्रय लिया है। मैं भी यही आश्रय ग्रहण करूँगा और मुक्ति प्रेम के दाता भगवान के चरणकमलों की सेवा के द्वारा इस दुरन्त अज्ञान सागर को सहज ही पार कर लूँगा।

प्यारे उद्धव जी! अपनी वृत्तियों को मुझ में तन्मय कर दो और इस प्रकार अपनी सारी शक्ति लगाकर मन को वश में कर लो फिर मुझ में ही नित्य युक्त होकर स्थित हो जाओ। बस, सारे योग साधना का इतना ही सार है।

तस्मात् सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया।

मय्यावेशितया युक्त एतावान् योगसंग्रहः।।61.23।।

यह भिक्षुक का गीत साक्षात्, ब्रह्मज्ञान–निष्ठा ही है।

इसी ज्ञान क्रम को आगे चौबीसवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को सांख्य योग के संदर्भ से उपदेश भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–प्यारे उद्धव! अब मैं तुम्हें सांख्य शास्त्र का निर्णय सुनाता हूँ। ब्रह्म में किसी प्रकार का विकल्प नहीं है। वह अद्वितीय सत्य है। मन, वाणी की उसमें गति नहीं है। ब्रह्म ही माया और उसमें उसके प्रतिबिम्ब रूप जीव दृश्य और दृष्टा के रूप में, दो भागों में विभक्त सा हो गया। उनमें एक वस्तु को प्रकृति कहते हैं। वही जगत में कार्य और कारण रूप धारण किया है। दूसरा भाग, ज्ञानस्वरूप है, पुरुष कहा गया है।

तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका।
ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते।।4.2.4।।

ब्रह्मा ने बहुत तपस्या किया। मेरे प्रसाद से रजोगुण के द्वारा पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग तथा इनके लोक पालों की रचना ब्रह्मा ने किया। देवताओं के लिये स्वर्ग, भूत–प्रेतादि के लिये अन्तरिक्ष और मनुष्यादि के लिये पृथ्वी को निर्धारित किया। इन तीनों लोकों के ऊपर महर्लोक, तपलोक आदि सिद्धों के स्थान हुये। असुर, नागों के लिये पृथ्वी के नीचे, अतल, वितल, सुतल आदि सात पाताल बनाये। त्रिगुणात्मक कर्मों के अनुसार जीव की विविध गतियाँ होती हैं। योग, तपस्या और संन्यास के द्वारा, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक रूप उत्तम गति प्राप्ति होती है तथा भक्तियोग द्वारा मेरा परम धाम मिलता है।

योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः।
महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मिमज्जति।। 15.24.1।।

जगत प्रपंच का उपादान–कारण प्रकृति है, परमात्मा आधिष्ठान है और इसको प्रकट करने वाला काल है। यह त्रिविधिता वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप है और मैं वही शुद्ध ब्रह्म हूँ। जब मैं कालरूप से व्याप्त होता हूँ, प्रलय का संकल्प करता हूँ, तब यह भूवनों के साथ विनाशरूप विभाग के योग्य हो जाता है। इसका क्रम है–प्राणियों के शरीर अन्न में, अन्न बीज में, बीज भूमि में और भूमि गन्ध तन्नमात्रा में लीन हो जाती है। गन्ध जल में, जल अपने गुण रस में, रस तेज में और तेज रूप में लीन हो जाता है। रूप वायु में, वायु स्पर्श में, स्पर्श आकाश में तथा आकाश शब्द–तन्मात्रा में लीन हो जाता है। अन्ततः राजस अहंकार अपने नियन्ता सात्विक अहंकार रूप मन में, शब्दतन्मात्रा पंचभूतों के कारण तामस अहंकार में, तथा त्रिविधि अहंकार महतत्व में लीन हो जाता है। महत्तत्त्व अपने गुणों में, गुण अव्यक्त प्रकृति में और प्रकृति अपने प्रेरक काल में लीन हो जाता

है। काल जीव में और जीव मुक्त अजन्मा आत्मा में लीन हो जाता है। आत्मा स्वरूप स्थित में रहता है। वह जगत की सृष्टि और लय का अधिष्ठान एवं अवधि है। उद्धव जी! मैंने तुम्हें सृष्टि से प्रलय और प्रलय से सृष्टि तक की सांख्यविधि बतला दिया। इससे संदेह की गाँठ कट जाती है और पुरुष अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।

एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः।

प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया।।29.25।।

भगवान ने कहा–उद्धव जी! गुणों के प्रभाव के कारण प्राणियों के स्वभाव में भी भेद होता है। गुणों से कैसा स्वभाव बनता है उसे तुम सावधानी से सुनो।

शम, दम, तितिक्षा, विवेक, तप, सत्य, दया, स्मृति, सन्तोष, त्याग, विषयों के प्रति अनिच्छा, श्रद्धा, लज्जा, आत्मरति, दान, विनय और सरलता सात्विक गुणों वाली है।

इच्छा, प्रयत्न, घमण्ड, तृष्णा, अकड़, देवताओं से धन की याचना, भेदबुद्धि, विषय भोग, युद्ध के प्रति उत्साह, यश में प्रेम हास्य, पराक्रम और हठपूर्वक उद्योग राजसिक वृत्तियाँ हैं। क्रोध, लोभ, मिथ्याभाषण, हिंसा, पाखण्ड, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दीनता, निद्रा, आसा, भय और अकर्मण्यता आदि तामस गुणों वाली वृत्तियाँ हैं।

जीव को जो योनियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब गुणों और कर्मों के अनुसार ही होती हैं। जो जीव चित्त पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह भक्तियोग द्वारा मुझे प्राप्त कर लेता है। इसी शरीर में तत्त्व ज्ञान एवं विज्ञान की प्राप्ति सम्भव है। मनुष्य शरीर बहुत दुर्लभ है। अतः मनुष्य को गुणों की आसक्ति हटाकर मुझे चिन्तन करना चाहिए।

येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः।

भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते।।32.25।।

तस्माद् देहमिमं लब्ध्वा ज्ञान विज्ञानसम्भवम्।

गुणसंङ्गं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः।।33.25।।

उद्धव! योग युक्ति से चित्तवृत्तियों को शान्त करके सत्त्वगुण पर भी विजय प्राप्त कर ले। गुणों से मुक्त होकर जीवभाव छोड़ मुझ से एकम एक हो जाये फिर मुझ ब्रह्म की अनुभूति सदैव बनी रहती है।

''ॐ नमो श्री रामलाल प्रभु जी परब्रह्मणे नमः''

श्री प्रभुजी ने विष्णु विमान लौटाया

—जगदीश राए बंसल ''अधम'' 9212434003 एवं 011—35699425

यह सर्व विदित है कि हमारा महान देश योग गुरू भारतवर्ष योगियों, सिद्धों और तपस्वियों का कर्म क्षेत्र रहा है। श्री सद्गुरुदेव भगवान जी बतलाया करते थे कि आज भी हिमालय के मन महेश आदि पर्वतों पर अनेकानेक तत्व विजयी—सिद्धयोगी राज महात्मा अपनी—अपनी साधनारत हैं। हिमालय में सदाशिव भगवान की गुफा का क्षेत्र पुरातन योगियों का प्रदेश कहलाता है। सिद्ध सेवित इस प्रदेश में अनेकानेक तत्व विजयी सिद्ध महात्मा सहस्त्रों वर्षों से बैठे हुए हैं, जो न कुछ खाते हैं, न मल—मूत्र का त्याग करते हैं। ये सभी सिद्ध गण आकाश गमन में दक्ष होते हैं। लेकिन कोई भी योगी राज महात्मा इस धरा—धाम पर अपना पग नहीं रखना चाहता। जब कि अपने गुरुदेव भगवान जगतात्मा त्रिजगपावन योग योगेश्वर श्री चन्द्र मोहन जी महाराज निज समाधि के परमानन्द को छोड़ कर अपने कलिमल बच्चों के कल्याणार्थ इस अवनि मण्डल पर रह कर कृपा के बादल बरसाते रहे हैं। इन शिष्यों में से जो साधक आशुतोष गुरुदेव भगवान के प्रति अन्तर्जगत में अधिक निष्ठावान हैं वे अन्य शिष्यों से गुरुकृपा के अधिक पात्र बन जाते हैं। इस प्रकार हम सभी गुरुभाई बहनों पर लौकिक विपत्तियों से निपटने के लिये गुरुदेव भगवान का शक्तिपात ''सुरक्षा कवच'' बना रहता है। इन बातों पर कोई विश्वास करे अथवा चूक जाए मगर तात्विक बात यह है कि आराध्यदेव जी के श्री चरणों की ही अहेतु की कृपाएँ हो जाया करती हैं।

इसी प्रकार का अद्भुत एवं चमत्कारी एक पहला कारुणिक दृश्य मध्य प्रदेश राज्य के अन्तर्गत शिवपुरी निवासी, गुरू भक्ति से ओतप्रोत, अन्तर्यामी गुरुदेव भगवान के लाड़ले एवं हमारे आदरणीय गुरू भाई 72 वर्षीय श्री अमरनाथ सक्सैना जी ने इस प्रकार वर्णन किया कि—यह कृपा लीला सन् 2013 की है। मेरी धर्मपत्नि श्रीमती स्नेह लता सक्सैना रोग ग्रस्त हो गई। अच्छे—अच्छे डॉक्टरों—वैद्यों से उपचार लिया। मगर ज्यों ज्यों दवा की त्यों त्यों मर्ज बढ़ती गई। शीघ्र ही हम पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा कि श्रीमती जी का बिस्तर से उठना—बैठना, हिलना—डुलना तक दुर्लभ हो गया। दूसरे शब्दों में यूं कहिए कि बिन पंख के पक्षी या सूंड के हाथी वाली स्थिति बन गई। डॉक्टरों ने इसे असाध्य रोग बता कर उसे राम भरोसे छोड़ दिया।

जब दवा से चैन न हो–तो दुआ से होती है।

जब ऐसे सद्गुरु मिले हों तो बात खुदा से होती है। ऐसे विषम लक्षणों से उसके जीवन की कोई किरण नजर नहीं आ रही थी। इस संकट की घड़ी में तारण हार गुरूदेव भगवान के प्रति हमारा दृढ़ विश्वास एवं श्रद्धा पत्थर की चट्टान की तरह पक्का रहा। प्राण रक्षक गुरूदेव भगवान जो भी करेंगे हमारे हित में ही करेंगे। हम श्वास पर श्वास मन्त्र जप के साथ सर्व समर्थ्य जी से प्रार्थना करते रहे कि शक्तिमान जी आपके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। आपने कितने मुर्दों में भी प्राण लौटाए हैं। हे संकट मोचन हमारी रक्षा करें। हे नाथ आपके बिना हमारा कोई सहारा नहीं है। हे ब्रह्माण्ड नायक, अमृत की खान, हे स्वयं नारायण हम आपकी शरण में पड़े हैं.....। इसी मध्य कालौनी के स्त्री पुरुष भी इनका अन्तिम समय जानकर आते–जाते रहे। हम सब से यही बतियाते रहे कि कालचक्र, युगचक्र और जगचक्र के कर्ता–धर्ता हमारे योग योगेश्वर भगवान गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प में ही हमारा कल्याण निहित है। शायद बुरे संस्कारों का भुगतान गुरुदेव महाराज इसी जन्म में करवा रहे हैं। हे गुरूदेव–

मीरां जैसी शक्ति नहीं है, शबरी जैसी भक्ति नहीं है,
संजीवनी जैसी बूटी नहीं है, शारदा जैसी बुद्धि नहीं है,
आकर करो उपचार, गुरूजी हम हार गए।
पल पल हमें दिया सहारा–हर आफत से मिला छुटकारा,
बिना पतवार के तेरा सहारा–पलट दे दाता भाग्य हमारा,
तेरे संकल्प में अमृत धार, गुरूजी हम ....।।

जहाँ इष्ट होता है, वहाँ अनिष्ट नहीं होता। कहते हैं कि चींटी के पगनुपुर बाजे तो भी सरकार सुन लेते हैं। और हुआ भी यही कि–**आ गई लहर शिवा के मन में**

आनन्द कन्द गुरू देव भगवान ने हम पर आनन्द सरोद ' के बादल यू बरसाए कि एक दिन श्रीमती स्नेह लता ने अपनी सरस वाणी से अमृत सा बुदबुदाया कि पूरा–पूरा विवरण तो मैं नहीं कर सकती (और कोई भी नहीं कर सकता) मैंने एक अलौकिक दृश्य देखा कि अखिल कोटि लोक नायक श्री विष्णु भगवान मुझे लेने के लिए यहाँ पधारे मैं अपने गुरू मन्त्र में तल्लीन थी ..... जैसे ही अखिलात्मा, श्री विष्णु जी महाराज ने..... मुझ को अपने दिव्य विमान में बैठाना चाहा...... तैसे ही ...... अखण्ड मण्डलाकार, तेजोमय त्र्यलोक पावन..... परम सिद्ध श्री प्रभु ...... रामलाल श्री महाराज... अपने घर आ गये गुरु दरबार के पवित्र स्वरूप से भौतिक शरीर रूप में प्रकट हो गए और श्री विष्णु भगवान जी से कहते सुने कि "मुनिया (गुरूदेव भगवान श्रीमती जी को इसी नाम से पुकारते थे) अभी नहीं जाएगी, अभी यहीं रह कर गुरू मन्त्र का जप करेगी।" मैंने

उनको मानसिक प्रणाम तो किया शरीर जड़ वत ही रहा।

भाई सक्सैना जी ने आगे बतलाया कि इस विचित्र घटना अर्थात् कल्पतरू, महासिद्ध, स्वयं नारायण स्वरूप दादा गुरूदेव भगवान, प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन, एवं जगत नियन्ता, त्रिजगपावन, कर्मयोगी, विष्णु भगवान जी महाराज के इक्षण दर्शन तथा झमझमाते–छन–छन छनाते दिव्य विमान के दर्शनों एवं शक्तिपात तथा वरदानों से मेरी अर्धांगनी, भाग्यवती श्रीमती स्नेहलता के स्वास्थ्य में अतुलनीय सार्थकता का इन्द्रधनुष चमकने लगा और चन्द्रमा की तरह शनैः शनैः चमकता ही चला। परिणामतः आत्मोन्नति की जिज्ञासु श्रीमती जी की समस्त लौकिक विपत्तियाँ शान्त हो गईं और वह यथा शीघ्र अपने कार्यक्रम, पूजा–पाठ, आरती, गुरुमन्त्र आदि गुरु आज्ञा के नियमित कर्म में व्यस्त रहने लग गई।

गहरी प्यास को मिठा रस पिलाते हैं गुरूजी।
हर बीमारी का हल दिलाते हैं गुरूजी।।
अपने आत्मज को उज्जवल बनाते हैं गुरू जी।
आजीवन सुरक्षा की गारण्टी देते हैं गुरूजी।।

श्री प्रभु जी महाराज की इस जीवन दाई कृपा लीला को दस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। भविष्य में कब तक मन्त्र जाप का यह......

को तो वरदाता, गुरूओं के महागुरू प्रभु श्री रामलाल जी महाराज ही जानें कि कितने सालों तक बड़ी सरकार का यह अमूल्य वरदान फलीभूत होता रहेगा। ऐसे जगत नियन्ता के श्री चरणों में कोटि–कोटि साष्टांग प्रणाम....... प्रणाम........ प्रणाम।

गुरूदेव जी जीप चला कर आए

भव भव्य भावं, त्रय ताप हारं।
भव भय विनाशं, गुरूदेव नमामि।।

दूसरा चमत्कारी दृश्य आदरणीय गुरुभाई श्री सक्सैना जी ने इस प्रकार बतलाया कि यह घटना 7–8 साल पहले की है। मेरा छोटा बेटा प्रिय सौरभ सक्सैना अपनी ससुर भार्या श्रीमती रक्षा और अपने सास–ससुर के संग एक विवाह समारोह से अपने निवास स्थान शिवपुरी लौट रहे थे। करुणा सागर त्रयलोक पावन गुरू देव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को मानसिक प्रणाम कर अपनी गाड़ी को गति शील किया। मगर भगवान श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि गहना कर्मणों गति। गाड़ी अपनी मस्त चाल के चलते मार्ग में किसी कलिष्ट संस्कार का उदय हो आया। हुआ यह कि अचानक सड़क पार करती एक महिला को बचाते बचाते महिला कार से टकरा कर गिर गई। बाद में पता चला था कि उसके एक पैर की हड्डी टूट गई। इस घटना से वहाँ गाँव के लोगों

की भीड़ इकट्ठी हो गई। उस भीड़ के 100–150 लोगों ने मेरे बहू–बेटे को घेर लिया। भाग्य की विडम्बना यह रही कि बहू–बेटे को संकट की उस धारा के विरुद्ध तैरने का साहस शून्य हो गया क्योंकि इतना हो.........

अन्तर्यामी गुरुदेव महाराज की विशेष अनुकम्पा से बहूरानी को क्षणिक जागृति हो आई। उसने मुझे फोन करके कहा–''पापाजी, हम गहरे संकट में फंस गए–मम्मी से कहना कि आज गुरु जी हमें बचा लें।'' बहूरानी के भयावह रूदन और लड़खड़ाती वाणी ने हमारे हृदय को चीर डाला।

हम (पति पत्नि) बिना किसी मनन, सोच विचार के अविलम्ब सर्वशक्तिमान, आराध्यदेव गुरुमहाराज के दरबार में पसर गए और श्री चरणों में बन्धक असहाय बच्चों की रक्षा के लिए गुहार की झड़ी लगा दी कि हे पतित पावन, अमृत की खान, भव भयहारी, हे ब्रह्माण्ड नायक, स्वयं नारायण हम आपके शरणागत हैं। अपने लाड़ले बच्चों की रक्षा करें। त्राहि माम.......हम दया की भीख मांगते हैं–

दया करो गुरुदेव हम पर दया करो,
बच्चों पर छाए संकट को दूर करो।।
ये मौत के किनारे खड़े हुए हैं,
त्राहि त्राहि नाथ पुकार रहे हैं।।
उस आतंक को दूर करो........दया......
उनको नहीं वहाँ बचाने वाला
आप बिन नहीं कोई सहारा
आकर संकट दूर करो..... दया.......

हम सदैव देखते–सुनते रहे हैं कि–

संकट को देख दयालु–नंगे पैर आते हैं,
आर्त–पुकार सुन निज कानों–अरसा नहीं लगाते हैं।

और यही सत्य प्रमाणित भी हुआ कि–**आ गई लहर शिवा के मन में**

आश्चर्य–महान आश्चर्य, भाग्य विधाता–संकट मोचन गुरुदेव भगवान श्री चन्द्र मोहन जी महाराज जीप सहित घटना स्थल पर प्रकट हो गए और घायल महिला एवं हतोत्साहित अपने हृदयांश बच्चों को जीप में लेकर निकटतम 'झूसी अस्पताल' में दाखिल करा कर अन्तर्ध्यान हो गए। वहाँ न किसी को जीप दिखाई दी और जीप वाले ''सरकार'' दिखाई दिए। मुझे (सक्सैना) अस्पताल से सूचित किया गया था कि शीघ्र झूसी के अस्पताल पहुँचें। मैं अपनी अलपज्ञता के सपनों की सँकरी गलियों से खोया खोया, त्रिकाल दर्शी–व्याधि विनाशक गुरुदेव महाराज की सुदूर दर्शिता से अस्पताल की दिशा में दौड़ा।

वास्तव में तो मेरी स्थिति गीता में कहे गए उस श्लोक जैसी थी जो महात्मा अर्जुन ने अखिल लोकनायक भगवान श्रीकृष्ण जी महाराज को कुरुक्षेत्र के मैदान में कही गई थी कि-

सीदन्ति मम गात्राणि–मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च्य शरीरे में–रोम हर्षश्च जायते।।

येनकेन प्रकारेण मैं दो घण्टे की अवधि में ही अस्पताल पहुँच गया और देखा कि मेरी पुत्र वधु ''रक्षा'' को ऑक्सीजन लगी हुई है। मैंने उपस्थित डॉक्टर साहिब से निवेदन किया कि हमारे पेशेन्ट को हमारी इच्छा और हमारे रिस्क पर डिस्चार्ज कर दीजिए। क्योंकि हमारा पूजा घर हमारे चिदानन्द स्वरूप गुरुदेव भगवान की अर्न्तदृष्टा से इतना विवरेटीड है कि वहाँ किसी बाहरी ऑक्सीजन की आवश्यकता ही नहीं होगी।

मैंने अपने गले से श्री प्रभुजी एवं गुरुदेव जी के लाकेट को बहूरानी के गले में धारण कर दिया। परिणामत: हम भाग्य विधाता–आशुतोष की अनन्य अनुकम्पा से स्वगृह शिवपुरी लौट आए। हमारे प्यारे प्यारे बहू–बेटे के दिलों पर बैठा भयावह का बुखार पाँच दिन पश्चात् उतरा तब उन्होंने कल्याणकारी कल्प तरू, प्रात: स्मरणीय श्री गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा जीप से अस्पताल लाने का रहस्य खोला। हमारी आँखें नम हो गईं। ऐसे जादूगर गुरुदेव भगवान को राम कहूं या कृष्ण कहूं। शेषनाग भी महिमा गाते थक जाऐंगे। पृथ्वी पर लिखें तो छोटी पड़ जाएगी..........। मुझे इस समय गुरुदेव जी के अभिन्न अंग एवं हमारे आदरणीय वरिष्ट गुरु भाई श्री ज्ञानी बाबा के एक भजन की याद ताजा हो आई कि–

गुरु चन्द्रमोहन करतार, तुम्हारी महिमा अपरम्पार भेद तेरा पाया ना (टेक)

मेरे लिए तो ब्रह्मा हो–विष्णु और महेश तुम्हीं
श्रीराम श्रीकृष्ण तुम्हीं–शंकर और गणेश तुम्हीं
बहती है तेरे चरणों में–योग की अमृत धार
भेद तेरा पाया ना...........

सिद्ध गुफा के दीपक हो–सिद्ध योग के उजियारे
काट रहे हो भक्तों के–छिपे हुए मन अंधियारे
कह मुनि ज्ञानी–ओ प्रभु ध्यानी साक्षात अवतार
भेद तेरा पाया ना.........

ऐसे निराले श्री गुरुदेव भगवान के श्री चरणों में कोटिशः दण्डवत प्रणाम... प्रणाम.. प्रणाम।

''ॐ श्री रामलाल प्रभवे नम:''

कल्याण का सरलतम् मार्ग

श्री सद्गुरुदेव भगवान का एक अकिंचन बालक–

अन्नू राम यादव, प्रयागराज फोन–9936678368, 7376691758

प्रात: स्मरणीय योग योगेश्वर आनन्द कन्द सर्व शक्तिमान अन्तर्यामी अनन्त श्री दादा गुरूदेव एवं श्री सद्गुरूदेव भगवान के कमलवत् चरणों में कोटिश: नमन एवं सभी आदरणीय भाई–बहनों को सादर चरण स्पर्श। आइए आज सद्गुरुदेव भगवान के मुखारविन्द से निकली अमृतवाणी पर कुछ चिंतन किया जाये। सद्गुरुदेव भगवान ने कहा है–''जो बैठना जान जाये, खाना जान जाये और सोना जान जाये तो उसका कल्याण निश्चित है, इसमें शंका की कोई बात नहीं।'' यह सुनकर सर्व साधारण के मन में तुरन्त यह विचार उठेगा कि यह कौन सी बड़ी बात है ? बैठना, खाना और सोना कौन नहीं जानता ? इसे तो सभी जानते हैं, यहाँ तक कि पशु–पक्षी भी बैठना, खाना एवं सोना जानते हैं। परन्तु यह सद्गुरुदेव भगवान के मुखार्विन्द से निकली हुई वाणी है, इसमें कुछ अवश्य गम्भीर तथ्य छिपे होंगे।

ईमानदारी से अगर हम देखें तो न तो हम ढंग से बैठना जानते, न खाना जानते हैं और न ही सोना जानते हैं। गुरूदेव भगवान का यह कथन सम्भवत: उनकी तरफ संकेत करता है जो कल्याण पथ के अनुगामी हैं, जो योग मार्ग के जिज्ञासु हैं अथवा जो साधनारत साधक हैं। अब आइए गुरूदेव भगवान द्वारा कही गई वाणी के एक–एक बिन्दु पर संक्षेप में विचार किया जाये–

जहाँ तक बैठने का प्रश्न है, एक साधक को साधना काल में अथवा जप–ध्यानाभ्यास के समय कैसे बैठा जाये, इसका विस्तृत विवरण श्रीमद्भगवत् गीता के छठवें अध्याय में दिया गया है। महर्षि पतंजलि जी ने भी योग दर्शन में ''स्थिर सुखासनम्'' सूत्र के माध्यम से उपदेश किया है। गुरूदेव भगवान कहा करते थे कि एक आसन से स्थिरतापूर्वक बैठने वाला अभ्यासी योगी हो जायेगा। स्थिर सुखासन से बैठने के लिए महापुरुषों द्वारा इतना जोर क्यों दिया जाता है। इसके मूल में मन की एकाग्रता का ही भाव छिपा है। मन जन्म–जन्मान्तर से विषयों के पीछे भागता रहा है। अत: उसे वश में करना अथवा स्थिर करना कठिन अवश्य है परन्तु असम्भव नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से धीरे–धीरे वश में किया जा सकता है। योग

सिद्धान्त में यह कहा गया है कि "यत्र मनो लीयते तत्र प्राणों लीयते।" यत्र प्राणों लीयते तत्र मनो लीयते।" अर्थात् मन और प्राण में अन्योन्याश्रित संबंध है। चिन्मय मिशन के महान सन्त ब्रह्मलीन स्वामी चिन्मया नन्द का कहना है कि जैसे मन और प्राण का अन्योन्याश्रित संबंध है वैसे ही मन और शरीर का भी एक दूसरे से गहरा संबंध है। अगर मन चंचल है तो शरीर भी चंचल रहेगा और अगर शरीर चंचल रहेगा तो मन भी चंचल रहेगा ही रहेगा। इसलिए मन की एकाग्रता के लिए शरीर को बिल्कुल स्थिर करके बैठने का अभ्यास करना चाहिए। वे कहते थे कि मन और प्राण तो अत्यन्त सूक्ष्म हैं इनको स्थिर करने में कठिनाई हो सकती है परन्तु शरीर तो अति स्थूल है, इसे आसानी से स्थिर किया जा सकता है। अगर साधक साधनाकाल में एक आसन से अपने शरीर को पूर्ण रूप से स्थिर करके बैठे तो धीरे–धीरे उसका मन एकाग्र होने लगेगा, यह बिल्कुल पक्की बात है।

महापुरुषों ने बार–बार इसीलिए उपदेश किया है कि साधक को सुखपूर्वक, एक आसन से, कमर, मेरुदण्ड, गरदन और सिर एक सीध में करके शरीर को बिल्कुल स्थिर करके बैठना चाहिए। स्वामी जी ने तो यहाँ तक कहा है कि साधनाकाल में स्वास के अतिरिक्त शरीर के किसी भी अंग में कोई हरकत नहीं होनी चाहिए। अगर नाक पर मक्खी बैठ जाये, उसे हटाने के लिए अथवा कहीं हो रही खुजली को दूर करने के लिए शरीर के किसी अंग का उपयोग न करें। शरीर की स्थिरता को दस मिनट के अभ्यास से प्रारम्भ करके इसकी अवधि को धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए। साधक अगर इस प्रकार से शरीर को बिल्कुल स्थिर करके बैठने का अभ्यासी हो जाये तो उसका मन अवश्य एकाग्र होने लगेगा। जैसा कि कहा गया है कि योग की वर्णाक्षरी मन की एकाग्रता से ही प्रारम्भ होती है। जब मन एकाग्र हो जायेगा तब धारणा, ध्यान और समाधि का मार्ग प्रशस्त होता चला जायेगा। एक और बात ध्यान देने योग्य है। ध्यानाभ्यास के समय अगर कमर, मेरुदण्ड, गरदन और सिर एक सीध में करके स्थिर होकर बैठें तो दो–तीन घण्टे तक बैठे रहेंगे नींद नहीं आयेगी। लेकिन जैसे ही ढीले पड़े वैसे ही नींद का आक्रमण हो जायेगा। इसका परीक्षण करके देख सकते हैं। इस लिए साधक को बिना घबराये धैर्यपूर्वक शरीर को स्थिर करके, एक ही आसन पर सुखपूर्वक सीधे बैठने का अभ्यास करना चाहिए क्योंकि मन की एकाग्रता के लिए यह बहुत आवश्यक है।

यह तो रही बात बैठने की। अब जरा खाने पर विचार करें। पशु तो खाना जानता है परन्तु मनुष्य खाना बिल्कुल नहीं जानता। एक शाकाहारी पशु के सामने कितना भी अच्छा माँस बनाकर रख दें, खाने को कौन वह सूंघेगा तक नहीं। इस प्रकार एक माँसाहारी

पशु के सामने छप्पन भोग रख दें वह उसकी तरफ आँख उठाकर नहीं देखेगा। वाह रे मनुष्य! साग–पात्र भी खायेगा छप्पन भोग भी खायेगा और माँस–मछली भी खायेगा। माँस–मछली तक तो कुछ गनीमत है, हो सकता है उसमें कुछ विटामिन मिलती हो, गुटखा और तम्बाकू भी खाता है। बताइए, उसमें कौन विटामिन मिलती है। जो खाना चाहिए मनुष्य वह भी खाता है और जो नहीं खाना चाहिए उसे भी खाता है। जब से हम पैदा हुए हैं, पेट सदैव हमारे साथ रहता है लेकिन आज तक हम यह नहीं समझ पाये कि इसमें कितना, कब और कैसा भोजन डालना चाहिए। प्रायः मनुष्य दिन भर बकरियों की तरह मुँह चलाता रहेगा। अगर अपनी मन पसंद का भोजन मिल गया तो क्या पूछना, आकण्ठ कर पेट भर लेगा चाहें भले ही बाद में अस्पतालों में भर्ती होना पड़े।

हमारा भोजन कैसा और कितना होना चाहिए, इसका विस्तृत वर्णन श्रीमद्भगवद् गीता में है। हम सभी जानते हैं, शायद इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। आयुर्वेद में कहा गया है कि भोजन की मात्रा और भोजन का समय निर्धारित होना चाहिए। शाम का भोजन हल्का और मात्रा में कम से कम होना चाहिए, वह भी बिस्तर पर जाने से ढाई घण्टे पहले। प्रायः लोग एक रोटी का दो ग्रास बना लेंगे और चार छह बार कूँच कर निगल जायेंगे। जब कि हाथ के अंगूठे के नाखून के बराबर ग्रास लेकर उसे कम से कम बत्तीस बार कूँचना चाहिए। कहा गया है कि भोजन पीयें और जल खायें। अर्थात् भोजन के ग्रास को इतना कूँचें कि वह लार के साथ मिल कर पीने योग्य हो जाये। जल को गट–गट निगलें नहीं बल्कि मुँह में थोड़ी देर इधर–उधर चलायें, जब पूरी तरह से उसमें लार मिल जाये तब निगलें। तनिक विचार करें कि क्या हम ऐसा करते हैं।

महर्षि चरक ने हित भुक, मित भुक और ऋतृ भुक पर विशेष जोर दिया है। विस्तार के भय से इस पर विस्तृत चर्चा सम्भव नहीं है; फिर भी थोड़ी चर्चा कर देना चाहते हैं। हित भुक का तात्पर्य है–हमारा भोजन ऐसा होना चाहिए जो स्वास्थ्य के लिए हितकारी हो। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है और जब मन ठीक रहेगा तभी साधना भी हो पायेगी। मित् भुक का तात्पर्य है–हमारा भोजन मात्रा में थोड़ा होना चाहिए। ज्यादा खायेंगे, पेट खराब होगा और यहीं से सारा उपद्रव शुरू हो जायेगा। सबसे महत्वपूर्ण है ऋत् भुक। साधक को तो इस पर विशेष ध्यान देना चाहिए। ऋत् भुक का तात्पर्य है–परिश्रम, ईमानदारी और नेक कमाई का भोजन। इसका मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। योग सिद्धान्त में कहा गया है कि जैसा खाये अन्न, वैसा होवे मन। मन को शुद्ध रखने के लिये भोजन का शुद्ध होना अति आवश्यक है। योग में मन की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। भोजन का मन पर तुरन्त प्रभाव पड़ता है। इसे एक उदाहरण से

समझा जा सकता है–

एक राजा अपनी रानी के साथ एक सन्त के पास जाया करता था। एक दिन राजा ने सन्त से आग्रह किया कि महाराज! एक दिन आप हमारे महल में पधारें। सन्त ने कहा राजन! मैं सन्यासी हूँ मेरा राजमहल में जाना उचित नहीं है। राजा और रानी के बार–बार आग्रह करने पर सन्त ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और एक दिन राजमहल में पहुँचे। उनका विधिवत् स्वागत सत्कार हुआ। राजा के अनुनय–विनय करने पर वे महल में रात–विश्राम भी किये। सुबह जब वे स्नान के लिए स्नानागार में गये तो वहाँ खूँटी पर टंगा हुआ एक हीरे का हार देखे। सन्त का मन उस हार की तरफ आकर्षित हो गया और वे उसे उठाकर अपनी झोली में छिपा लिये। इसके बाद जल्दी–जल्दी राजा से विदा लेकर अपने आश्रम पर आ गये। जब रानी अपना हार लेने गई तो हार नदारत। पूरे राजमहल में कोहराम मच गया कि रानी का हार चोरी हो गया नौकरों से जब पूछा गया तो वे बताये कि स्नानागार में उस महात्मा के अलावा कोई नहीं गया था। परन्तु उस सन्त पर किसी को शक नहीं हुआ और उस हार की चोरी की जाँच प्रारम्भ हो गई।

इधर महात्मा जी का हाल देखिये। जैसे ही वे आश्रम पर पहुँचे, उनको भयंकर दस्त होने लगा। दिन भर और रात भर बार–बार दस्त होता रहा। जब राजा का खाया हुआ सब अन्न बाहर निकल गया तब उन्हें होश आया कि अरे! हार चुराकर मैंने यह कैसा अनर्थ कर डाला। सन्त हार लेकर दौड़ते हुए राजा के पास राजमहल आये। राजा ने कहा महाराज! क्या हुआ, आप इतना परेशान क्यों हैं ? सन्त कहा–पहले उस रसोइये को बुलाइए जिसने भोजन बनाकर कल रात हमें खिलाया था। पूछने पर रसोइया ने बताया कि और राशन तो महल के भण्डार से लिया गया था परन्तु चावल चोरी का था और चोरों से पकड़ा गया था, सन्त को सब समझ में आ गया और उन्होंने राजा से कहा राजन्! उस चोरी के चावल ने मेरे मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि मैंने रानी का हार चुरा लिया। क्षमा याचना करते हुए सन्त ने उस हार को वापस कर दिया और अपने आश्रम के लिए प्रस्थान किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि चोरी के चावल का तुरन्त प्रभाव मन पर पड़ा। ऐसे ही अनेक उदाहरण हैं, विस्तार के भय से उनका उल्लेख करना सम्भव नहीं है। एक साधक को चाहिए कि वह मेहनत, ईमानदारी और नेक कमाई के ही अन्न का ही भोजन करे तभी वह साधना के पथ पर अग्रसर होकर कल्याण का भागी बन सकता है।

अब जरा सक्षेप में सोने पर भी विचार कर लें। अधिकांश लोग टी. वी. के सामने

अथवा यों ही गप–शप करते देर रात तक जागते रहते हैं और सुबह आठ–नौ बजे तक सोते रहते हैं। स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मन के लिए रात में जल्दी सो जाना चाहिए और सुबह जल्दी उठ जाना चाहिए। साधक को तो ब्रह्ममुहूर्त में अवश्य उठ जाना चाहिए। कम से कम साढ़े तीन बजे जरूर बिस्तर छोड़ देना चाहिए। नित्यकर्म से निवृत्त होकर सुबह पाँच बजे जप–ध्यान के लिए गुरुदेव के स्वरूप के समक्ष बैठ जाना चाहिए, ऐसा हमारे प्राण धन श्री गुरुदेव भगवान का आदेश है। सन्तों ने कहा है कि संसार के प्राणी–पदार्थों के प्रति आसक्ति एवं मोह ही भवसागर है और इस भवसागर से पार होने के लिए गुरु की आज्ञाही नौका है। अगर हम भवसागर से पार होना चाहते हैं अर्थात् अपना कल्याण चाहते हैं तो गुरुदेव की आज्ञा का अक्षरशः पालन करना अति आवश्यक है। आइए हम सब यह संकल्प लें कि सुबह साढ़े तीन बजे के बाद कभी नहीं सोयेंगे, अर्थात् सुबह साढ़े तीन बजे अवश्य उठ जायेंगे, नित्यकर्म से निवृत्त होकर साढ़े चार बजे गुरुदेव भगवान की आरती करके पाँच बजे से पहले गुरुदेव के स्वरूप के समक्ष जप–ध्यान के लिए बैठ जायेंगे। अगर कुछ दिनों तक हम लोग निरन्तर ऐसा अभ्यास करते रहें तो विश्वास मानिये सुबह साढ़े तीन बजे स्वतः ही नींद खुल जायेगी। किसी को हमें जगाने की अथवा एलार्म लगाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। सोने की उपयोगिता का वर्णन करते हुए गुरुदेव भगवान प्रायः कहा करते थे–

''सोना तो सबसे भला, जो कोई जानै सोय।
अन्तर लवलागी रहे, सहजहिं सुमिरन होय।।''

अर्थात् रात को भोजनोपरान्त जब हम बिस्तर पर जाते हैं तो सीधे शव आसन में लेट जायें और दीक्षा काल में गुरुदेव द्वारा जैसा उपदेश दिया गया है, वैसे ही जप–ध्यान करते–करते सो जायें। इसका परिणाम यह निकलेगा कि पूरी रात सोने में भी सहज रूप से जप–ध्यान चलता रहेगा।

एक जिज्ञासु ने एक सन्त से पूछा महाराज! बार–बार कल्याण की चर्चा हो रही है, कल्याण के बारे में कुछ बताइए। कल्याण किसे कहते हैं ? वह कौन सी स्थिति है जिसे कल्याण का होना कहा जाता है ? सन्त ने उत्तर दिया बेटा! कल्याण का अर्थ है–कभी दुखी न होना। दुख से आत्यन्तिक निवृत्ति ही कल्याण है। सबसे बड़ा जन्म–मरण का दुख होता है। जन्म–मरण से छुटकारा पा जाना ही कल्याण है। निर्भय, निर्द्वद्व, तनाव एवं चिन्ता रहित परम् शान्त मन को भी कल्याण की ही दशा कहा जाता है। परम् शान्ति ही ईश्वर का स्वरूप है, ऐसा गीता के चौथे अध्याय के उन्तालीसवें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है। सन्त ने और आगे बताया–योग की उच्चतम् स्थिति निर्बीज

समाधि ही वास्तव में कल्याण की स्थिति है। अगर निर्बीज समाधि की स्थिति में संयोगवश शरीर छूट जाये तो पुनर्जन्म नहीं होगा अर्थात् जीव मुक्त हो जायेगा। यही मानव जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है और यही मानव जीवन का मूल उद्देश्य भी है।

अतः सभी साधकों को गुरुदेव भगवान की इस अमृत वाणी पर निरन्तर चिन्तन करना चाहिए–''जो बैठना जान जाये, जो खाना जान जाये और जो सोना जान जाये, उसका कल्याण निश्चित है, इसमें कोई शंका की बात नहीं।'' इस लिए सन्तों ने जो दिशा–निर्देश एवं उपदेश दिये हैं उसके अनुसार ही साधना का नियम बनाना चाहिए। इससे सरल साधना का मार्ग और क्या हो सकता है ? गृहस्थ, विरक्त सभी इस मार्ग पर चल कर कल्याण की स्थिति को प्राप्त करके अपने जीवन को सफल बना सकते हैं। इसके साथ ही अब मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ। लेख में हुई त्रुटियों के लिए आप अपने इस अल्पमति छोटे भाई को क्षमा कीजिएगा। **सादर जयगुरुदेव!**

'यज्ञाना जपयज्ञोऽस्मि'

(श्री सुरेन्द्रबहादुर एम.ए. दर्शनशास्त्र)

प्रायेण वेद तदिदं, न महज्जनोऽयं,
देव्या विमोहित, र्मातर्बत माय पालम।।
त्रय्यां जडीकृतमति, र्मधु पुष्पितायां।
वेतानिके महति, कर्मणि युज्यमान:।।

–श्रीमद्भागवत् 6/3/25

अर्थात् बड़े–बड़े विद्वानों की बुद्धि कभी भगवान् की माया से मोहित हो जाती है। वे कर्मों के मीठे–मीठे फलों का वर्णन करने वाली अर्थवाद–रूपिणी वेदवाणी में ही मोहित हो जाते हैं और यज्ञादि बड़े–बड़े कर्मों में ही संलग्न रहते हैं तथा इस अत्यन्त सुगम भगवान्नाम की महिमा को नहीं जानते। यह कितने खेद की बात है।

संसार में जितनी भी प्रकार के साधनाएँ हैं, अथवा आध्यात्मिक अनुष्ठान हैं उनमें जप का स्थान बहुत ऊँचा है। भगवान स्वयं अपने मुखारविन्द से कहते हैं कि 'सभी यज्ञों में जप–यज्ञ मैं हूँ। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विभिन्न यज्ञों के फल भिन्न–भिन्न हैं किन्तु जपयज्ञ का फल है स्वयं भगवान की प्राप्ति।

गीता के उपदेश का रहस्य

डॉ. विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र 'विनय'

गीतोपदेश की प्राप्ति और श्रवण का अधिकार किसे है—यह बात स्वयं गीता से ही स्पष्ट हो जाती है। गीता की प्रादुर्भूति विषाद योग से होती है। विषाद तो सभी के जीवन में आता है, किन्तु सभी उसे भगवान् के समक्ष अनावृत नहीं करते, इसलिए वह योग नहीं बन पाता। अर्जुन और दुर्योधन (ऐतिहासिक सत्य होने पर भी) आध्यात्मिक दृष्टि से परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। अर्जुन शब्द का अर्थ है—सरल-सन्मार्ग पर चलने वाला साधक और दुर्योधन का अर्थ है—कूटनीति का आश्रय लेकर जिह्ममार्ग पर चलने वाला कलयुगी व्यक्ति। गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुन की उपस्थिति के पूर्व दुर्योधन के चरित्र का यही पक्ष तीसरे, आठवें और दसवें श्लोकों में संकेत किया गया है। कलि-स्वरूप दुर्योधन की वाणी के ये प्रमुख चार दोष यहाँ स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं—1. असत्य, 2. मर्म-वेधकता, 3. चाटुपरता और 4. संदिग्धता। पाण्डवों की सेना दुर्योधन की सेना से बहुत अल्प थी, फिर भी दुर्योधन उसे महती कहता है, यह वाणी का प्रथम दोष है। इसके बाद वह आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपद पुत्र द्वारा व्यूहाकार खड़ी की गई' कहकर द्रोणाचार्य के मर्म को चोट पहुँचाता है। मानो वह उपालम्भ दे रहा हो कि 'जो आपके पुराने शत्रु द्रुपद का पुत्र था उसे आपने (अपने वध के लिए उत्पन्न हुआ जानकर भी) जो अस्त्र-विद्या सिखाई यह आपकी बुद्धिमानी नहीं थी।' 'तव शिष्येण धीमता'—पद से द्रोणाचार्य की इसी भूल पर चोट की गई है और जान-बूझकर धृष्टद्युम्न न कहकर 'द्रुपद-पुत्र' शब्द द्वारा आचार्य की वैर-वह्नि को जाग्रत करने का कूट-प्रयत्न किया गया है जो स्पष्ट है, यह द्वितीय दोष हुआ। तदनन्तर अपने पक्ष के वीरों की गणना करते समय सर्वप्रथम द्रोणाचार्य का नाम ग्रहण करना प्रकरण की दृष्टि से उचित होते हुए भी वाणी के तृतीय दोष चाटुपरता को व्यंजित कर देता है।

दसवें श्लोक में 'पर्याप्त और अपर्याप्त' शब्दों का अर्थ यद्यपि प्रमुख टीकाकारों ने 'हमारी सेना जीतने में कठिन तथा पाण्डवों की सेना जीतने में सुगम' किया है। किन्हीं-किन्हीं के मतानुसार इसका बिल्कुल विपरीत ही अर्थ है अर्थात् 'अपर्याप्त और पर्याप्त' शब्दों का अर्थ क्रमशः 'अल्प-शक्तिशाली और अधिक शक्तिशाली' है। दुर्योधन द्वारा जान-बूझकर ऐसे द्वयर्थक शब्दों का प्रयोग वाणी का संदिग्धता-रूप चतुर्थ

दोष है। इस प्रकार इस प्रसंग से दुर्योधन का चरित्र स्पष्ट हो जाता है। अर्जुन की वाणी सरल, संदिग्ध और उनके आन्तरिक भावों का सुस्पष्ट प्रकाशन करती है। यही कारण है कि प्रथम अध्याय में आगे चलकर वे अपनी शारीरिक और मानसिक अवस्था का स्पष्ट चित्रण करते जाते हैं–यही दोनों व्यक्तियों का भेद है। विषाद तो दुर्योधन के जीवन में भी आता है किन्तु वक्रमार्गीय और बहिर्मुख होने के कारण वह 'योग' नहीं बन पाता। यही कारण है कि गीतोपदेश के समय युद्ध–स्थल में उपस्थित रहने पर भी वह गीता का श्रवण नहीं कर पाता। गीता तो अर्जुन को ही प्राप्त होती है, जिनका विषाद भी प्रभु–समर्पित होकर 'योग' बन जाता है।

गीतोपदेश का रहस्य–यद्यपि गीता अर्जुन को प्राप्त होती है, किन्तु इसके लिए उन्हें अपने व्यक्तित्व का क्रमशः परिमार्जन करना पड़ता है। ध्यान से देखने पर समग्र गीता के उपदेश–वाक्यों को तीन शैलियों में विभाजित किया जा सकता है–(1) शास्त्रोपस्थापिका या निरपेक्ष शैली। (2) शास्त्र–व्यवस्थापिका या सापेक्ष शैली। (3) शास्त्र निर्मापिका या विशेष शैली।

जहाँ पर भगवान् श्रीकृष्ण बिना किसी विशेष अभिनिवेश के केवल शास्त्र–वचनों को उपस्थित कर देते हैं, वही प्रथम शैली है, जहाँ पर 'युद्धयस्व', 'उत्तिष्ठ' आदि क्रियापदों द्वारा अर्जुन को सम्प्रेरित करते हुए शास्त्र–वचनों की प्रकरणानुसार (अर्थात् अर्जुन के लिए) व्यवस्था देते हैं, वहाँ द्वितीय शैली है, किन्तु जहाँ अतिशय कृपा परवशता द्वारा अपने स्वरूप, शक्ति आदि की ओर उन्मुख करके अर्जुन का सम्पूर्ण भार स्वीकार करते हैं, वहाँ अनुग्रहरूप नवीन शास्त्रविधि का निर्माण होता है, यह गीतोपदेश की तृतीय शैली है। जो ज्ञानी है, उसके लिये शास्त्र के प्रमाण को ही उपस्थित कर देना पर्याप्त है, कर्मनिष्ठ को उचित–अनुचित कर्त्तव्य की व्यवस्था देना आवश्यक है, किन्तु भावुक भक्त का तो सर्वविध समर्पण स्वीकार करके उसे निश्चिन्त कर देना ही उचित होता है। हमारे विचार से इन्हीं तीन शैलियों को क्रमशः ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग की संज्ञा प्राप्त हुई है।

प्रथम और द्वितीय अध्याय में अर्जुन के तीन व्यक्तित्व क्रमशः दिखलायी पड़ते हैं–

(1) पहला व्यक्तित्व अर्जुन का स्वामिभाव है। अर्जुन रथी हैं और श्रीकृष्ण सारथि हैं, परम्परानुसार रथी सारथि को आज्ञा देता है। इसी प्रकार अर्जुन भी श्री कृष्ण से सर्वप्रथम इसी शब्दावली में बात करते हैं–

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत। 1/21

अर्थात्–'हे श्रीकृष्ण! मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कीजिए। यहाँ आगे पीछे का पूरा प्रसंग अर्जुन की अहंक्रिया का चित्रण करता है। इस बात को वे गाण्डीव उठाकर (धनुरुद्यम्य) बड़े संरम्भ से कहते हैं। आगे भी उनकी शब्दावली यही है कि 'देखूँ कौन मुझसे युद्ध करने को आया है' आदि। इसके उत्तर में श्रीकृष्ण रथ को कथित स्थान में खड़ा करके आज्ञाकारी सारथि की भाँति यही कहते हैं कि 'हे अर्जुन! तुम इन एकत्र हुए कुरुवंशियों की ओर देखो'–

उवाच पार्थ पश्यैतान्

समवेतान् कुरुनिति। 1/25

(2) आगे जब अर्जुन सम्यक् निरीक्षण करते हैं तब उनके अन्तःकरण की संस्क्रिया (चित्त) और प्रक्रिया (बुद्धि) दोनों जाग्रत होती है और वे परिस्थिति की समीक्षा करके 'तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः' श्रीकृष्ण के प्रति मित्र या सखाभाव से उपस्थित होते हैं। जैसे एक सुहृद के सामने अपनी सम्पूर्ण परिस्थिति को संकोच रहित होकर कहा जाता है उसी प्रकार पार्थ भी अपनी सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक दशा का वर्णन करते हुए अपनी बात रखते हैं और मानो श्रीकृष्ण को उचित सलाह देने को प्रेरित करते हैं। इस प्रसंग में अनेक बार भगवान् को 'कृष्ण', 'केशव', 'गोविन्द', 'जनार्दन' आदि नामों से सम्बोधित करने में इसी सत्य भाव की व्यंजना है। इस भाव के अनुरूप उत्तर भगवान् श्रीकृष्ण द्वितीय अध्याय में एक मित्र के प्रेरक उद्बोधन के रूप में इस प्रकार देते हैं–

कुतस्त्वा कश्मलमिदं

विषमे समुपस्थितम्।

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।।

क्लैब्यं मा स्म गमः

पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं

त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।।

2/2/3

(3) अब आगे उनमें अपने निर्णय और भगवान् श्रीकृष्ण के इस उद्बोधन पर कार्याकार्य की विचिकित्सा उत्पन्न होती है अर्थात् अब उनका अन्तःकरण विक्रिया 'मनः' प्रधान अर्थात् भावुक हो जाता है। इस समय वे किंकर्त्तव्यविमूढ होकर अपने कार्पण्य–दोष

का अनुभव करते हुए शिष्य भाव से भगवत्प्रपन्न होते हैं—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः

पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेता।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितंब्रूहितन्मे

शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम्॥

2/7

इसी के बाद गीतोपदेश का आरम्भ होता है। एक गुरु जिस प्रकार विपरीत–मार्ग में भटके हुए शिक्षार्थी को डाँट लगाते हुए उसे उचित सिद्धान्त पर लाता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को अनुशासित करते हुए कहते हैं—

अशोच्चयानन्वशोचस्त्वं

प्रज्ञावादांश्च भाषसे।

गतासूनगतासूंश्च

नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

2/11

'अर्जुन! तुम अशोचनीयों के लिये व्यर्थ शोक करते हो, बोल तो रहे हो पण्डितों की सी शब्दावली, किन्तु हो अपण्डित ही; क्योंकि पण्डितजन तो जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिए और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिए दोनों के ही लिए शोक नहीं करते।'

गीता का उपसंहार भी इन्हीं तीनों भावों के अनुसार होता दिखलायी पड़ता है। अठारहवें अध्याय के 63 वें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'पार्थ! मैंने तुम्हें गुह्य से गुह्यतर यह ज्ञान सुना दिया, अब तुम पूरी तरह विचार करके जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो—'**विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।**' यह निरपेक्ष शैली है। भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ अर्जुन की इच्छा को प्रधानता देते हुए अर्जुन के प्रथमभाव (स्वामिभाव) के अनुरूप उपसंहार करते हैं, किन्तु जब अर्जुन चुप रह जाते हैं तब आगे वे मित्र भाव से पुनः सर्वगुह्यतम तथा परम वचनों के द्वारा अर्जुन का हितसंसाधन करते हुए सापेक्ष शैली में वक्तव्य का परिसमापन करते हैं; क्योंकि वे उनके परम इष्ट–मित्र हैं—'**इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।**' (18/64) आगे श्लोक में वे 'मन्मना भव मद्भक्तो' आदि के द्वारा शास्त्र की व्यवस्था देते हुए शपथपूर्वक अपने कथन को पुष्ट करके अर्जुन को अपना प्रिय मानते हैं और उन्हें अपनी प्राप्ति का आश्वासन भी देते हैं—'**मामेवैष्यसि**

सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।' (18/65) तथापि अभी कुछ बात शेष रह गयी प्रतीत होती है–'तुम मुझे ही प्राप्त होगे, मैं तुमसे इस बात की प्रतिज्ञा करता हूँ'–यहाँ 'एव' 'माम् एव' द्वारा कुछ परोक्षभाव–सा दिखलायी पड़ता है और तभी तो विश्वास दिलाने के लिए 'प्रतिजाने'–प्रतिज्ञा करता हूँ–यह कहना पड़ रहा है। यदि गीता शास्त्र का उपसंहार यहीं हो जाता तो भक्त के उद्धार में भगवान् श्रीकृष्ण की कोई विशेष जिम्मेदारी नहीं रहती। चूँकि द्वितीय अध्याय में अर्जुन अन्ततः शिष्य बनकर प्रसन्न हो चुके हैं, अतएव अब विशेष शैली द्वारा गुरुभाव की सार्थकता और शरणागति की सिद्धि करनी ही पड़ेगी। इसीलिए 66 वें श्लोक में सारी कर्मविधि को छोड़कर एकमात्र अपनी शरण में आने का आदेश देते हुए शिष्य का सम्पूर्ण भार स्वीकार कर लेते तथा उसे शोकमुक्त बना देते हैं–

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो
मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

अर्जुन के व्यक्तित्व की यह यात्रा अहं के उदात्तीकरण की साधना है। अर्जुन का प्रथम व्यक्तित्व **'यावदेतान्निरीक्षेऽहम्' 'योत्स्यमानानवेक्षेऽहम्'** के रूप में जीव के अहंकार का प्रदर्शन करता है, किन्तु गीता के उक्त चरम वाक्य तक आते–आते वह सर्वान्तर्यामी प्रभु का 'अहम्' बन जाता है–'अहं त्वा मोक्षयिष्यामि।' अर्जुन के पास जो 'अहम्' था उसे जब भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वीकार कर लिया तब उनके पास केवल 'तव' अर्थात् 'तुम्हारा' ही रह गया, इसीलिये वे **'करिष्ये वचनं तव'** (18/73) कहकर युद्ध के लिए उद्यत हो जाते हैं। अहंकार वस्तुतः परमात्मा का ही हो सकता है, क्योंकि एकमात्र वही आत्मरूप अर्थात् 'अहम्' पदवाच्य है। परिच्छिन्न जीव जब उसे अपना बना लेता है तब उसे विश्वात्मा को प्रत्यर्पित कर देता है तब सम्पूर्ण शोक क्षणभर में नष्ट हो जाता है, यही गीता का परम और चरम रहस्य है।

—जो जैसा करता है, वैसा ही फल भोगता है। जिनका चित्त परमेश्वर के परमानन्द का अनुभव करता है, उन्हें स्वप्न में भी किंचित मात्र लेश नहीं होता। वे परम गति को प्राप्त होते हैं।

—श्रुतिसार

ज्योतिष की दृष्टि में पुनर्जन्म विज्ञान

श्री डॉ. महेन्द्र प्रकाश गुप्त

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अध्याय 2 श्लोक 13 में बड़े स्पष्ट रूप से पुनर्जन्म की घोषणा की है–

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्तिधीरस्तत्र न मुह्यति।।

अर्थात्–

देही का शरीर यह जैसे, शैशव यौवन जरा धरे।
मिले मृत्यु पश्चात् जन्म, धीर न इसमें मोह करे।।

गीता के द्वितीय अध्याय के बाइसवें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जैसे हम लोग पुराने वस्त्र उतार कर नवीन वस्त्र धारण करते हैं वैसे ही यह आत्मा पुराने जीर्ण–शीर्ण शरीर को उतार कर नवीन शरीर धारण करती है।

सुकरात से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक

आज से हजारों वर्ष पहले यूनान में एक ज्योतिषी ने जन्म लिया था जिसका नाम सुकरात था उसने अपने जीवन काल में अनेक भविष्यवाणियाँ की जो कालान्तर में सत्य साबित हुईं। उस समय के अज्ञानी लोगों ने सुकरात को मृत्यु दण्ड दिया। जब उसका मृत्यु का समय अत्यन्त निकट था उनके शिष्य कारागार में उपस्थित हुए वे उन्हें बचाकर निकाल ले जाना चाहते थे किन्तु सुकरात जानते थे कि मृत्यु के बाद जीवन में अतः उन्होंने अपने शिष्यों से कहा था ''तुम लोग मृत्यु की ओर बढ़ रहे हो मैं जीवन की ओर जा रहा हूँ'' क्योंकि मृत्यु के बाद जीवन अवश्य है यहाँ भौतिक शरीर मरता है आत्मा अजर–अमर है।

पुनर्जन्म के अनेक उदाहरण ईसाइयों के धर्म ग्रन्थ बाइबिल में भरे पड़े हैं ईशा मसीह ने स्वयं कहा था कि बपतिस्मा देने वाले जोन जिनका सिर हैरट ने उतार लिया था, नवी इलियश का ही पुनरावतार है।

स्लाम धर्म की प्रसिद्ध पुस्तक, उनका धर्म ग्रन्थ 'कुरान' घोषणा करता है ''तुम मरे हुए थे उसने तुम्हें नया जीवन दिया। वह तुम्हें मार देगा और पुनः जीवित करेगा और अन्त में तुम्हें अपने में समेट लेगा। कुरान में स्पष्ट लिखा है कि मुनके नकीब कब्र से निकालकर कर्मों के अनुसार हर व्यक्ति का हिसाब करेंगे।

हिन्दू धर्म में पुनर्जन्म की अपनी तर्क संगत सैद्धान्तिक धारणा है मनुष्य अपने कर्मों से ही देवता बनता है और अपने निकृष्ट कर्मों से ही चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है। रामचरितमानस स्पष्ट रूप से घोषणा करता है।

करम प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहिं तो तस फल चाखा।।

मनुष्य योनि कर्म प्रधान है जबकि अन्य योनियाँ केवल भोग प्रधान है उस योनि में भोग के पश्चात् उससे श्रेष्ठ योनि प्राप्ति होती है।

पाश्चात्य विद्वान् पाल गोइंग ने अपनी पुस्तक 'लाहिली' में पुनर्जन्म के सिद्धान्त की मान्यता प्रदान करते हुए घोषणा की है—भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है, आत्मा ही जीवित रहती है और वह पाप–पुण्य के अनुसार नीचे गिरते हुए या ऊपर उठते हुए दूसरा शरीर धारण करती है।"

विद्वान् जेक लंडन ने पुनर्जन्म की आधारशिला पर एक उपन्यास का सृजन किया है, जिसका नाम है 'स्टार रोबर'। आयरलैण्ड के प्रसिद्ध उपन्यासकार जेम्स जायस ने अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'यूलिसिस' में पुनर्जन्म की घटनाओं को बार–बार दोहराया।

अहिंसा के अग्रदूत भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा था कि—'यदि इस जन्म में नहीं तो किसी दूसरे जन्म में मैं समूची मानवता को मैत्री के आलिंगन में बाँध लूँगा।

सुप्रसिद्ध नोबिल पुरस्कार विजेता ईसाक बेरीसिस सिंगर ने अपनी कहानियों के माध्यम से पुनर्जन्म के सिद्धान्त की घोषणा की। वे कहते हैं—"मृत्यु कुछ नहीं है। यदि सब कुछ ईश्वर का ही अंश है तो मृत्यु हो ही कैसे सकती है ? आत्मा तो कभी मरती नहीं है और शरीर शायद ही बहुत समय तक जीवित रह पाता हो।"

पाश्चात्य ज्योतिषी 'कीरो' का रहस्योद्घाटन

ज्योतिष वह सूक्ष्म विज्ञान है जो आत्मा पर पड़ने वाले सूक्ष्म प्राकृतिक प्रभाव (ग्रह, नक्षत्र, राशि) द्वारा पुनर्जन्म का रहस्योद्घाटन करता है। प्रत्येक प्राणी प्रत्येक राष्ट्र का हर घड़ी, हर क्षण प्रकृति के नियमों से शासित होता है। इन्द्रिय विज्ञान अति सूक्ष्मतम है। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद 'कीरो' ने अपनी पुस्तक 'कीरोज बुक ऑफ नम्बरस' में फ्रांस के राजा सेन्ट लुइस के सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं को एकत्र कर, उनके जीवन के 539 वर्ष बाद फ्रांस में ही उत्पन्न होने वाले राजा लुइस 16 की जन्म से लेकर विवाह और मृत्यु की घटनाओं की निश्चित तिथि समय सन् आदि की एकरूपता के दर्शन कराये हैं तथा यह सिद्ध कर दिया कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रकृति का शाश्वत सिद्धान्त है सेन्ट

लुइस का जन्म 23 तारीख को सन् 1215 को हुआ था इसके ठीक 539 वर्ष बाद फ्रांस में ही लुइस 16 का जन्म 23 तारीख सन् 1231 में हुई उसके 539 वर्ष बाद लुइस 16 की शादी सन् 1770 में हुई विस्तृत अध्ययन के लिए कीरो द्वारा प्रणीत उपर्युक्त पुस्तक के चैप्टर 19 का अवलोकन करें, तो पुनर्जन्म की बात स्पष्ट हो जायेगी।

हिन्दू संस्कृति में पुनर्जन्म की धारणा

हिन्दू संस्कृति पुनर्जन्म के सिद्धान्त के वैज्ञानिक महत्व को स्वीकार करती है यही कारण है कि यहाँ मृत्यु के पश्चात् भौतिक शरीर को चितारिन में होम कर दिया जाता है आत्मा और शरीर का एक सेतु है जब सेतु टूट जाता है तो आत्मा नदी के उस पार खड़े व्यक्ति को अपने निर्जीव शरीर को इस पर पड़े देखती रहती है। सेतु के टूट जाने के कारण वह पुन: निर्जीव जीर्ण–शीर्ण शरीर में प्रवेश नहीं कर पाती है।

संसार में जो लोग शव को पृथ्वी में गाड़ देते हैं वे पुनर्जन्म के सिद्धान्त को नहीं जानते हैं क्योंकि जब तक इस निर्जीव शरीर की हड्डियाँ तक शेष हैं तब तक मोह वश आत्मा उसे अपना शरीर समझती रहती है। इस संदर्भ में 12 जुलाई 87 को प्रकाशित 'हिन्दुस्तान साप्ताहिक' में प्रकाशित मिश्र की सत्य कथा पुनर्जन्म लेने के कारण को स्पष्ट करती है।

मिश्र में खुदाई का कार्य ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर विलियम बनार्ड ईसा करा रहे थे। एक दिन खुदाई कराते समय हृदयगति रुक जाने से उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद इस खुदाई के कार्य का ठेका लिया लंका निवासी विजय जयरत्ने ने। उक्त खुदाई के स्थान पर आज से पाँच हजार वर्ष पहले दफन राजकुमारी निफैतिसी की ममी रखी थी। विजय जयरत्ने ने जनरेटरों की व्यवस्था करके खुदाई का काम प्रारम्भ किया। जैसे ही विजय जयरत्ने ममी के पास पहुँचे जनरेटरों ने काम करना बन्द कर दिया। जयरत्ने पर चमगादड़ों ने कातिलाना हमला बोल दिया। वे बुरी तरह घायल हो गये। रात में चमगादड़ों ने उनके निवास स्थान पर आक्रमण कर दिया। उनकी पत्नी मायावती की भी मृत्यु हो गई। वे भागकर बम्बई आये एक होटल में ठहरे। रात को विजय जयरत्ने की चीखों से होटल हिल गया लोग जयरत्ने के कमरे की ओर दौड़े। दरवाजा अन्दर से बन्द था। उसे तोड़ा गया तो पता चला कि विजय जयरत्ने मर चुके थे। एक चमगादड़ कमरे में उड़ रहा था। तात्पर्य यह कि पाँच हजार वर्ष पहले भौतिक शरीर से विलग राजकुमारी निफैतिसी का आत्मा वहाँ बैठ कर ममी की रक्षा करती थी। उस आत्मा ने ही विजय जयरत्ने को मार डाला।

शरीर के नाश का सिद्धान्त अद्वितीय

हिन्दू–दर्शन में भौतिक शरीर को नष्ट कर देने का सिद्धान्त सर्वोपरि है जैसे टूटे–फूटे मकान को कोई व्यक्ति जब तक नहीं छोड़ता जब तक वह पूर्णरूप से नष्ट नहीं हो जाता है। जब नष्ट हो जाता है तब वह उसे छोड़कर कोई किराये का मकान लेकर या स्वयं का मकान बनवाकर रहने लगता है। इसी प्रकार चिताग्नि में भौतिक शरीर के नष्ट हो जाने पर आत्मा दूसरे शरीर को प्राप्त करने का प्रयास करती है यही उस आत्मा का पुनर्जन्म है।

ज्योतिष में पुनर्जन्म पर विचार

ज्योतिष का पुनर्जन्म सिद्धान्त प्रकृति के सूक्ष्म विधान की अदृश्य अणुशक्ति से मण्डित है इसी कारण ज्योतिष अतीत और भविष्य का उद्‌घाटन करती है मनुष्य के जन्मकाल के ग्रह, नक्षत्र, राशियाँ और उन पर पड़ने वाले प्रभाव के माध्यम से किसी भी व्यक्ति, राष्ट्र, विश्व में घटित होने वाली घटनाओं की पूर्ण घोषणा ज्योतिष करती है।

आज से 450 वर्ष पूर्व फ्रांस में एक ज्योतिषी हुआ था जिसका नाम नास्त्रडेमस था जिसने अपने जीवनकाल में 2000 के लगभग भविष्य वाणियाँ कीं। नेपोलियन, हिटलर, मुसोलनी के पैदा होने के कई सौ वर्ष पूर्व उनके नामों की घोषणा करते हुए उनकी महत्वाकांक्षाओं का वर्णन किया है उनकी लिखी पुस्तक की 50 लाख प्रतियाँ एक सप्ताह के अन्दर ही बिक गयीं।

ज्योतिष शास्त्र के विद्वानों ने सूर्य को आत्मा कहा है। सूर्य रूपी आत्मा जिस राशि में विराजमान होती है उससे उस जातक की पूर्व जन्म की जाति की घोषणा की जा सकती है। अन्य ग्रहों की स्थिति दृष्टि, बल के अनुसार उसके पुनर्जन्म के पूर्व की स्थिति का अवलोकन किया जा सकता है, जैसे ज्योतिष के विद्वान् किसी जातक के जन्म पत्र में पंचमभाव में उच्च का या स्वगृही सूर्य को देखकर इस बात की घोषणा कर देते हैं कि उनका एक पुत्र बड़ा प्रतापी होगा और देखा यह जाता है कि उस जातक के यहाँ उत्पन्न पुत्र के जन्म पत्र में भी प्रतापी राज्ययोग का योग विद्यमान है। इसके विपरीत षष्टेश (कर्ज) का सम्बन्ध द्वितीय भाव धनभाव तथा एकादश भाव लाभ या द्वितीयेश या एकादशेष से होगा तो उस व्यक्ति के बाल्यावस्था में ही उसके आगे के जीवन में कर्जदार होने की घोषणा की जा सकती है। उसके जीवन काल में पड़ने वाले शुभ–अशुभ ग्रहों के प्रभावों के अनुसार किसी व्यक्ति या राष्ट्र के उत्थान–पतन की घोषणायें ज्योतिष शास्त्र द्वारा की जा सकती है। गत तथा आगामी भविष्य के दर्शन को प्रस्तुत करने वाला ज्योतिष शास्त्र एक अद्वितीय विज्ञान है।

सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर

श्री विद्यानन्द सरस्वती

एञ्चप्राणा: पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च सूक्ष्मभूतानि मनोबुद्धिरित्येतानि सूक्ष्म शरीरम्।

—अना. त. द. अध्याय 9, सूत्र 65

पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच सूक्ष्म भूत मन तथा बुद्धि—इन सब घटकों से सूक्ष्म शरीर है।

इसके आदि में प्रत्येक आत्मा के साथ एक सूक्ष्म शरीर सम्बद्ध हो जाता है। इस शरीर का परित्याग एक ही बार प्रलय होने पर अथवा तत्वज्ञान हो जाने पर किया जाता है। जीवात्मा का विविध योनियों में संसरण—सूक्ष्म भूतों से घटित सूक्ष्म शरीर के द्वारा होता है। जो मृत्यु के उपरान्त भी आत्मा को अवेष्ठित किये रहता है। जैसे बीज में रहता है वैसे ही सूक्ष्म शरीर में स्थूल शरीर के बीज रहते हैं। जन्म—जन्मान्तर के कार्यों में संस्कार क्षीण होकर, कर्मों का भोग न रहने से जब आत्मा जन्म—मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है तभी सूक्ष्म शरीर छूटता है। प्रलय की अवधि में भी आत्मा के साथ सूक्ष्म शरीर नहीं रहता, परन्तु सूक्ष्म शरीर का सहारा लिए बिना आत्मा स्थूल शरीर से काम नहीं ले सकता। इसलिए मुक्ति—काल के समाप्त होने अथवा प्रलयोपरान्त सर्ग—काल में भी जीवात्मा शरीर धारण करता है, कभी पहले की तरह सूक्ष्म शरीर उसके साथ क्रमबद्ध हो जाता है।

सूक्ष्म शरीर पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच सूक्ष्म भूत तथा मन और बुद्धि (अहंकार) इन सबको सूक्ष्म—तत्त्वों का संश्लिष्ट शरीर है। इसमें ये तत्व अत्यन्त सूक्ष्म रूप में समाविष्ट रहते हैं। प्राण समस्त करणों (पाँच ज्ञानेन्द्रिय के साथ पाँच कर्मेन्द्रियों को मिला कर दस बाह्यकरण तथा मन एवं बुद्धि अंतःकरण) के वृत्तिमात्र है। सूक्ष्म शरीर के घटक अवयवों के रूप में प्राणों का यही अर्थ अपेक्षित है। पाँच तन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) पाँच सूक्ष्मभूत हैं। करण अनाश्रित नहीं रह सकते। अतः पाँच तन्मात्र उनके आश्रयभूत माने जाते हैं। सूक्ष्म शरीर स्थित ज्ञानेन्द्रियों से तात्पर्य स्थूल शरीर के दिखाई देने वाले चक्षु—श्रोत आदि से नहीं है; वरन् इनकी सूक्ष्म—शक्तियों से है। दिखाई देने वाली इन्द्रियाँ तो उनके गोलक मात्र हैं, जो ज्ञानेन्द्रियों की अंतर्निहित सूक्ष्म शक्ति से प्रेरित होकर ही क्रियाशील होते हैं। इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति स्थूल भूतों से पूर्व पंचतन्मात्राओं के साथ—साथ होती है।

सूक्ष्म शरीर कर्मों का अधिष्ठान है, जिसमें संस्कार भौतिक रूप में संचित रहते हैं। इन संस्कारों के अनुरूप वृत्तियाँ बनती हैं और वृत्तियों के अनुसार मनुष्य कर्म में प्रवृत्त

होता है। अन्नमय आदि कोशों का बीजमय रूप भी सूक्ष्म शरीर में सन्निहित रहता है। सूक्ष्म शरीर को माध्यम बनाये बिना अभौतिक आत्मा भौतिक शरीर से काम नहीं ले सकता, जब आत्मा द्वारा सूक्ष्म शरीर में विचारतरंग उठती है तभी स्थूल शरीर में क्रिया होती है।

सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत करणों के व्यापार के कारण ही यह प्रतीत होती है कि इन सबके पीछे एक चेतन सत्ता है। इसलिए सूक्ष्म शरीर को ही लिंग शरीर भी कहा जाता है। वस्तुत: जब इन करणों की प्रधानता को दृष्टि में रखकर निर्देश किया जाता है तभी उसे इस नाम से व्यवहृत किया जाता है।

तीसरे शरीर–कारण शरीर को स्पष्ट करते हैं–

प्रकृतिरूपत्वात् सर्वव्यापकं कारण शरीरम्।

कारण शरीर प्रकृति रूप होने से विभु है।

सूक्ष्म शरीर के 17 घटकों में 12 करण आधेय अथवा आश्रित हैं और पाँच सूक्ष्मभूत या तन्मात्रा आधारभूत तत्व है। कारण शरीर का अर्थ है प्रकृति, जिससे सभी पदार्थों का निर्माण हुआ है। आधारभूत प्रकृति के ये तन्मात्र सूक्ष्म शरीर की रचना में उपादान कारण होने से उसकी रचना के लिए मूल प्रकृति रूप है। इसीलिए कारण शरीर को प्रकृति रूप कहा जाता है। प्रकृति रूप होने से कारण शरीर को विभु कहा जाता है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि कारण शरीर व्यक्तिरूप से सर्वत्र व्याप्त है।

स्थूल शरीर की रचना में जीवात्माओं का सहयोग रहता है। अत: प्रत्येक जाति के शरीर में समानता रहने पर भी अवयव भेद के कारण उन शरीरों को एक दूसरे से भिन्न पहचाना जा सकता है। परन्तु सूक्ष्म तथा कारण शरीर ईश्वरीय रचना होने के कारण व्यक्तिरूप से भेद होने पर भी रचना की दृष्टि से समान हैं। इस समानता के कारण ही सब जीवों के कारण शरीर को 'एक' कह दिया जाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि कारण शरीर व्यक्ति रूप से जब जीवों का एक ही होता है। व्यवहार में इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि के आधार पर भेद देखने में आता है उसका कारण इन्द्रियादि के गोलक हैं न कि स्वत: इन्द्रियों की रचना अथवा उनकी अन्तर्हित सूक्ष्मशक्ति।

सुषुप्ति अथवा गाढ़ निद्रा में भी सूक्ष्म शरीर का व्यापार भी बन्द हो जाता है। उस अवस्था में कारण शरीर ही रहता है। सुषुप्ति में किसी भी प्रकार के सुख–दु:ख, राग–द्वेष, आदि का अनुभव नहीं होता। इस समानता के आधार पर ही कारण शरीर और आनन्दमय कोश को परस्पर संतुलित किया जाता है।

सिद्धयोग का मार्ग

सिद्धयोग का मार्ग बड़ा विलक्षण है। उसमें आह भरने की फुरसत नहीं न शिकवा करने की गुञ्जाइश। यह मार्ग विहङ्गम मार्ग है। इसमें उड़ने को निर्वाध आकाश मिल जाता है। उड़ने के लिए पंख मजबूत होने चाहिए फिर कुछ भी मुश्किल नहीं। श्री गुरुदेव का ध्यान करने से रोग ठीक हो जाते हैं। पर श्री सद्गुरुदेव की सही धारणा प्रत्येक व्यक्ति के वश की बात नहीं। इसके लिये हनुमान जी जैसा हृदय चाहिए। जो हृदय फाड़कर श्रीराम को दिखा सके। यदि श्री गुरुदेव में हनुमान जैसी अनन्य निष्ठा हो तो 'ध्यानमूल गुरोर्मूर्ति:' यह सिद्धानत सबसे सरल है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा तुरीय सभी शरीरों का ध्यान करना आना चाहिए।

- आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

ध्यान-साधना की परम्परा कायम हो !

हमारे पूर्वजों ने ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल और सुख-समृद्धि का ज्ञान स्कूलों एवं कॉलोजों में जाकर नहीं लिया। उन्होंने अपनी अन्त:प्रेरणा और अनुभवों से ही सीखा कि ध्यान मन का मालिक बना देता है, अन्यथा जीवन भर मन की गुलामी ही गुलामी है। सच्ची स्वतन्त्रता मन के मालिक बनने में ही है। ध्यान हमारे भीतर के अनन्त ज्ञान को उद्‌घाटित करता है। इसलिए बचपन से ही ध्यान साधना की परम्परा, परिवार में, डाली जानी जरूरी है।

ध्यान-साधना से सहज-भाव अपने आप स्वास्थ्य लाभ होता है। ध्यान स्व में स्थित करता है और स्वास्थ्य शब्द का अर्थ भी-स्व स्थित, का संकेत करता है। अत: ध्यान ही स्वास्थ्य है और स्वास्थ्य ही ध्यान है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ध्यान से हमारी छिपी शक्ति जो अनन्त है, जाग्रत होती है और तब हमें स्वास्थ्य भी मुफ्त मिलता है। लेकिन हमें यह मंजूर नहीं। स्वास्थ्य का खजाना हमारे अन्दर भरा पड़ा है, परन्तु हम उसे बाहर ढूंढने का व्यर्थ श्रम करते हैं तथा रोग हटाने के चक्कर में उलझते रहते हैं। आँख बन्द कर स्वरूप को जानिये और स्थित हो जाइये। इस साधना में एक क्षण ही तो लगता है।

-मोहनलाल

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/21-23 SEPTEMBER 2023

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री

उद्‌गीथो रसः

चराचर भूतों का पृथ्वी आश्रय है पृथ्वी का रस (जल) है, क्योंकि पृथ्वी जल में ही ओत-प्रोत है, जल का रस औषधियाँ हैं, क्योंकि औषधियाँ जल का ही परिणाम हैं उन औषधियों का रस पुरुष है, क्योंकि पुरुष (नरदेह) अन्न का ही परिणाम है। उस पुरुष का भी रस वाक् है उस वाणी का भी उससे अधिक सारभूत ऋक् का रस साम है तथा उस साम का भी रस उद्‌गीथ (ॐ कार) है।